समर्पण

प्रतिकूल परिस्थितियों में प्रताड़ित और पीड़ित होकर भी तर्क द्वारा विवेक की जो भावना हममें जीवित रहती है; वही मनुष्यत्व का अवलम्ब है। सिसकती रहकर भी यदि वह जीवित रह सके तो आज अपना मनुष्यत्व खो रहे मनुष्य को वह कल 'मनुष्य' बना सकेगी।

## तर्क—

सौन्दर्य की खोज में गर्दन ऊँची किये, माथे को तनिक पीछे की ओर डाल, गम्भीर निश्वास से स्फुरित नासा उठा, जब मैं चाह भरी दृष्टि अपने चारों ओर दौड़ाता हूँ, तर्क को श्रान्त कर देने वाली भावना शायद मुझसे कोसों दूर जान पड़ती है। परन्तु 'खोज' और 'चाह' का अर्थ है, जो कुछ पा रहा हूँ, उससे सन्तुष्ट नहीं।

जो कुछ है, उससे भिन्न की कामना होने का अर्थ है तुलना और अभाव की अनुभूति। अभाव भी होने और न होने की अवस्थाओं में तुलना है। यह तुलना मेरे मस्तिष्क में सचेत रूप से हो या अभ्यास और संस्कार से मैं तुरंत ही परिणाम और निश्चय पर पहुँच जाऊँ, तुलनात्मक विवेचन की क्रिया मेरे मानव-मस्तिष्क में सचेत या अचेत रूप से प्रतिक्षण चला ही करती है। 'मैं' मानव समाज और जाति का एक साधारण औसत प्राणी हूँ। अपने इस स्वभाव से मैं समष्टि मानव का स्वभाव समझ सकता हूँ। तुलना की क्रिया जब शब्दों में प्रकट होती है, उसे 'तर्क' का नाम दिया जाता है।

सौन्दर्य के चित्रण और कला की साधना में तर्क की परुष वृत्ति से असंगति की आशंका जान पड़ती है। परन्तु सौन्दर्य की चेतना असुन्दर के परिष्कार और बहिष्कार की वृत्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं। कला की साधना अकलात्मक का परिष्कार और बहिष्कार मात्र है। कलाकार और पारखी का संस्कार और अभ्यास से घिरा चेतन-अचेतन तर्क ही सौन्दर्य और कला के विवेक और विवेचना का आधार है।

सुन्दर-असुन्दर, उचित-अनुचित, क्रिया-कर्म का विवेचन मनुष्य अपने संस्कारों और अभ्यास के आधार पर करता है। मनुष्य का संस्कार और अभ्यास भी कुछ समय तक लगातार किया हुआ क्रिया-कर्म ही है। यदि वर्तमान में मनुष्य के क्रिया-कर्म, इष्ट-अनिष्ट और सुन्दर-असुन्दर के विवेचन के लिये तुलना और तर्क की गुंजाइश है तो उसके अतीत के क्रिया-कर्म के सम्बन्ध में भी तर्क द्वारा विवेचन की

गुंजाइश हो सकती है; जो आज संस्कार और अभ्यास का रूप ले चुके हैं। अतीत में मनुष्य ने जो विवेक और तर्क अपने क्रिया-कर्म के विषय में किया, वह उस समय की परिस्थितियों के अनुकूल उचित ही था परन्तु परिस्थितियाँ बदलगईं और बदल रही हैं; इस स्थूल वास्तविकता से किसने इनकार किया है और कौन ऐसा कर ही सकता है? अतीत में मनुष्य को मनुष्य होनेके नाते अपनी परिस्थितियों के अनुकूल विवेक और तर्क का अधिकार था। आज उसका यह अधिकार क्यों छीन लिया जाय? मनुष्य बने रहने की उसकी भावना का दमन क्यों किया जाय?

और फिर जब मैं सौन्दर्य की खोज करता हूँ तो उसे केवल तृप्ति में पाता हूँ। स्थूल या अस्थूल पदार्थों के तृप्ति दे पाने के गुण और सामर्थ्य में ही उनका सौन्दर्य है। इस नाते सौन्दर्य की कामना केवल जीवन की कामना ही दिखाई पड़ती है और सौन्दर्य की रचना के लिये कला की साधना जीवन में पूर्ति और विकास का प्रयत्न मात्र ही।

जीवन से मुझे मोह है। व्यक्तिगत रूप से और समष्टि रूप से भी। जीवन के प्रति अपने इस मोह से मैं लज्जित नहीं। इस व्यक्तिगत और व्यक्तिगत से अधिक विशाल, मनुष्य के समष्टि जीवन से परे मुझे कुछ दिखाई नहीं देता तो उसके प्रति अपने मोह के कारण कुण्ठित होने का कारण हो भी क्या सकता है?

जीवन के प्रति मोह के कारण यदि मैं वैयक्तिक और समष्टि जीवन में तृप्ति ढूँढ़ने के प्रयत्न में तर्क का आश्रय लेता हूँ तो कलाकार बन पाने

की महत्वाकांक्षा में किसी असंगति की आशंका मुझे दिखाई नहीं देती। यदि मेरा प्रयत्न कभी किसी को अरुचिकर जान पड़ता है तो यह मेरे विवेक की त्रुटि हो सकती है; कला की साधना के रूप में जीवन के प्रति विरक्ति नहीं।

पथभ्रष्ट होने से बचने की सतर्कता के कारण ही कला साधना की महत्वाकांक्षा में तर्क के प्रति मेरी अनुरक्ति होती है। तर्क की न्यूनता मेरी दृष्टि में दोष हो सकती है उसका आधिक्य नहीं। इसलिये 'तर्क-का तूफ़ान' जैसा कर्कश शीर्षक भी मुझे कला की साधना में असंगत नहीं जान पड़ा।

× × ×

जिन व्यक्तियों और स्थलों से मुझे प्रेरणा मिलती है, उनके प्रति मैं आभारी हूँ। ज्ञातव्य विषयों में जिन व्यक्तियों से सहायता मिली है, उनके प्रति कृतज्ञ हूँ। उत्साह बढ़ाने वाले पाठकों को धन्यवाद।

× × ×

इस संग्रह की अनेक कहानियाँ रानी, माया, मनोहर-कहानियाँ, हिन्दुस्तान, आज आदि में प्रकाशित हुई थीं। दो-एक 'आल इण्डिया रेडियो' से भी सुनाई जा चुकी हैं। कहानियों को संग्रह में देने के लिये, नये सिरे से लिख उनमें घटती-बढ़ती करने से वे नये रूप में आई हैं।

**१५ सितम्बर**
**विप्लव-लखनऊ.**

**यशपाल**

९

## खिलखिला

जिन ममता भरी आँखों सन्तान का रूप माँ-बाप देखते हैं, शेष संसार वैसे नहीं देख पाता। माँ-बाप देखते हैं, हृदय की आँख से अपने हृदय के टुकड़े को। संसार देखता है, गाहक की दृष्टि से, मूल्य आँकने के विचार से; जैसे पदार्थ की उपयोगिता या आकर्षण से उसकी क़द्र की जाती है।

इन्दु का नाम माँ-बाप ने अपने हृदय-आकाश का चाँद समझ इन्दु रक्खा था। दूसरे लोगों के लिए वह चाँद न बन सकी। कोई हृदय-चकोर उसकी चाह में यौवन के शुक्ल पक्ष में भी पर फड़फड़ाने के लिये व्याकुल न हुआ। पुरुष में रूप न भी हो तो कोई बात नहीं, और बहुत कुछ हो सकता है परन्तु स्त्री में रूप न हुआ तो फिर होगा क्या? बात जैसी कड़वी है नित्य जीवन में उतनी ही सत्य भी।

इन्दु सक्सेना की उपमा थी कुरूप के लिए। चेहरे का रंग साँवले से काफ़ी अधिक गहरा, होंठ........यदि केवल होंठों को ही देखा जाता तो पुष्ट और धनुषाकार थे। कोई चित्रकार अभ्यास के लिए उनके रेखा-चित्र बनाने का यत्न कर सकता था परन्तु ठोढ़ी और अनुपात से छोटी नाक ने अपने स्थान से पीछे हट उन्हें अकेला छोड़ दिया। होंठ आगे

बढ़ यों श्रीहीन हो गये जैसे सुन्दर गीत से लय और ताल पीछे रह जाने पर वह विश्री हो जाता है। इस पर बचपन में निकली शीतला माता अपने स्नेह के गहरे चिह्न छोड़ गयीं। आँखें बड़ी थीं और उनके सफ़ेद कोयों में स्वाभाविक तौर पर गहरे लाल डोरे। इस रूप को ऊँचे उठा कर दिखाने में प्रकृति को क्या गौरव अनुभव होता?........ क़द भी छोटा ही रह गया।

आधुनिक विचार के महत्वाकांक्षी माँ-बाप ने लाड़ली बेटी को ऐन्ट्रेन्स पास करा कॉलेज में भर्ती करा दिया। कॉलेज में आदर पाने के लिए इन्दु के पास एक ही उपाय था, कठोर परिश्रम। उज्ज्वलता और प्रतिभा ने चेहरे पर स्थान न पा इन्दु के मस्तिष्क में आश्रय पाया। मस्तिष्क कठोर परिश्रम के योग्य था। कॉलेज में पढ़ने-वाली लाज से कुम्हलाती लड़कियाँ लड़कों की बोली-ठोली से बिंधती थीं तो इन्दु के लिये दूसरे ही ताने थे। एक दिन किसी मनचले ने दीवार पर पैन्सिल से लिख दिया, 'मिस इन्दु से प्रार्थना—हमारी आँखों पर रहम कीजिये, बुरका ओढ़ कर आया कीजिये।' दूसरी लड़कियों पर चोट करने के लिये दीवारों पर लिखे फ़िकरे इन्दु की दृष्टि से गुज़रते थे तो यह कैसे न दिखाई देता। इस अपमान और उपेक्षा का प्रतिशोध होता उस समय, जब परीक्षा में वह अपनी श्रेणी में सबसे प्रथम आती। पौरुष का अभिमान करनेवाले युवा पुरुष कई क़दम पीछे रह जाते।

माता-पिता ने लड़की के लिए गृहस्थ का संसार बसाने के सभी सम्भव यत्न किये। उन्हें सफलता न हुई। कारण अनेक थे, लड़की का पर्दे में छिप कर न रहना, माता-पिता की सम्मानित और सम्पन्न वर ढूँढ़ने की ज़िद। धन-दहेज़ के ज़ोर पर धन पाया जा सकता है, नर शरीर भी, परन्तु प्रतिभा नहीं। प्रतिभा सम्पन्न लड़की के लिए एक मालिक ख़रीद बेटी को जीवन भर नर-पशु द्वारा रुँदवाना

माँ-बाप को स्वीकार न था। निराश हो उन्होंने लड़की को लड़का समझ पढ़ाने का उपक्रम जारी रक्खा। इन्दु ने एम० ए० पास किया, प्रथम रह कर। एम० ए० की परीक्षा के लिये उसने जो निबंध लिखा, वह पुस्तकाकार छपा। दूर लोगों ने उसकी प्रशंसा की। बम्बई ने स्त्रियों के एक कॉलेज ने उसे प्रोफ़ेसर के पद के लिये निमंत्रण दिया। इन्दु इलाहाबाद छोड़ बम्बई चली गयी। पति-मालिक की दासी और उपयोगी वस्तु बन कर नहीं, आत्म-निर्भर सम्मानित नागरिक बन कर।

× × ×

क्वार बीत रहा था। मंसूरी की मौसमी आबादी छँट चुकी थी। जैसे पीतवर्ण, क्षीण शरीर प्रसूता स्नान कर, नये वस्त्र पहन धूप में बैठ अपने केश सुखाती है वैसा ही रूप-रंग मंसूरी का हो रहा था। क्वार के प्रभात की धूप में उजली-उजली और सूनी-सूनी। शेष रह गये थे वे लोग जिनके लिये मंसूरी क्रीड़ा-स्थली नहीं, अपना घर है या जिन्हें अरोचक जान पड़ने पर भी डाक्टर की आज्ञा से बेमौसम मंसूरी का सेवन करना पड़ता है।

अपने शौक से मंसूरी की उपेक्षा कर अब इन्दु डाक्टर की आज्ञा से क्वार के अंत में भी मंसूरी में ही थी। जब तक सम्भव हो सके जाड़े में भी उसे वहाँ रहना था। दिलाराम होटल के कमरे प्रायः सूने पड़े थे। दर्शकों की उत्साहवर्द्धक दृष्टि के अभाव में फुलवाड़ी भी श्रीहीन पड़ी थी। टहनियों पर फूलों के स्थान में बीजों की फलियाँ भर गयीं; जैसे कुमारी का चञ्चल आकर्षण बीतकर गृहणी के यथार्थ और उपयोग की गम्भीरता आगई हो।

गहरी ओस में नहायी वनस्पति और घास पर, पहले पहर की चढ़ती धूप में, ओस की भारी-भारी बूँदें चमक रही थीं। इन्दु होटल के पूर्वी पंखे की ओर कैन्वस की आराम कुर्सी पर अभी धोये बाल सुखा रही थी। माथे पर टिका बाँया हाथ आँखों को किरणों से बचाये था।

उँगलियों के अंतर से उसकी दृष्टि होटल से नीचे उतरती ढलवानों की ओर थी जो छोटी-मोटी पहाड़ियों की रीढ़ों में बँटती-बँटाती दूर देहरादून को गोद में लिये अब भी कोहरे की चादर ओढ़े थी। कोहरा आकार-हीन बादल की भाँति वनस्पति से ढँकी पहाड़ी भूमि पर छा रहा था। जहाँ तहाँ जल के पोखर और टीन की छतें काँच से मढ़े आँगन की भाँति चमक रही थीं। रंग-बिरंगी पहाड़ी चिड़ियाँ सूखी घास और क्यारियों में मनुष्य की आँख से दिखाई न पड़नेवाली अपनी खुराक झपट लेने के लिये पैंतरे से फुदक रही थीं। सूर्य की गरमी पा तितलियाँ अपने निर्बल परों को धीमे-धीमे हिला हवा पर तैरने लगीं। धूप से आड़ के लिये माथे पर रखे हाथ की उँगलियों के अंतर से इन्दु को यही सब दिखायी दे रहा था।

उसकी कुर्सी की बग़ल, कारनेशन की क्यारी में होटल का पहाड़ी माली सफ़ाई कर रहा था। होटल में बिताये चार मास के अलग-अलग और चुप जीवन में, जब इन्दु डाक्टर की आज्ञा से अपनी पुस्तकों और काग़ज-क़लम से बिछुड़ी हुई थी, होटल की फुलवाड़ी में कारनेशन की यह क्यारी ही इन्दु के लिए मानसिक सुख का सहारा थी। वर्षा न होने पर नियमित भ्रमण के लिये 'कैमलबैक-रोड' या 'माल-रोड' जाते समय वह होटल की सड़क पर खुलते दरवाज़े से न जा, इधर से ही घूम कर जाती। पतली-पतली टहनियों पर टहकते वे गहरे लाल, गुलाबी, ऊदे और सफ़ेद फूल, उनकी वह लौंग की सी प्यारी गंध; उसके उदास मन को गुदगुदा देते। भारी वर्षा की चोट से उनकी पँखुड़ियाँ ढीली पड़ जाने पर उनकी उदासी भी इन्दु के मन को छू जाती। पुस्तकों से युद्ध करते-करते निर्बल पड़ गयी, मोटे-मोटे शीशों के सहारे काम लेती, अपनी दृष्टि से उन फूलों को कुछ देर देख वह आगे चली जाती।

वह क्यारी भी बेरंग और बेरौनक़ हो चुकी थी। माली के सधे हुए हाथ लम्बी खुर्पी के निर्द्वंद्व नीचे प्रहारों से आस-पास की सूखी घास और

पत्ते समेट खाद बन जाने के लिये क्यारी में ही दबा रहे थे। कार्नेशन की छोटी और निर्बल टहनियों और उन पर सूख गये फूलों को कठोर उँगलियाँ चूर कर खाद बन जाने के लिये मसल देतीं। शेष स्वस्थ सबल टहनियों को झुका, उनकी गाँठें भूमि में दबा माली फुनगियों को ऊपर छोड़ देता।

बूढ़े माली से इन्दु का परिचय था। उसने कई बार सुन्दर फूलों की टहनियाँ इन्दु को नज़र की थीं। उन टहनियों को काँच के गिलास में रख धन्यवाद के रूप में इन्दु ने कुछ आने उसे दिये थे।

माथे पर रखे हाथ की आड़ से इन्दु ने पूछा—'माली इन पेड़ों को तोड़े क्यों डाल रहे हो? क्यारी में पानी दो फूल निकल आयेंगे।'

अपनी आयु के अधिकार से इन्दु के भोलेपन पर मुस्करा बूढ़े माली ने खुरपी रख दी। विश्राम के लिये हाथों को घुटनों पर टिका, इन्दु की ओर देख उसने उत्तर दिया—'बीबी जी, अब इन पौधों में फूल थोड़े ही खिल सकते हैं, यह तो बुढ़ा गये........बेकार हो गये........जैसे हम हैं। इन टहनियों को दबा देते हैं। इनसे नये कल्ले फूटेंगे। अगले मौसम में हुजूर आयेंगी तो फिर वही रूप-रंग रौनक़ और बहार देखेंगी। मालिक, दुनिया ऐसे ही चलती है। कोई पेड़-पौधा, पशु........क्या इन्सान सदा एक-सा ही थोड़े बना रहता है!........पुराने से नया पैदा होता है। सिलसिला आगे चलता है।'

मंसूरी में बिताया चार मास विश्राम का जीवन इन्दु के लिये यंत्रणा हो रहा था। अस्वादु और अरोचक औषधि की भाँति वह अरोचक और असन्तुष्ट करनेवाले विश्राम को झेल रही थी। पिछले नौ वर्ष कॉलेज की नौकरी में उसने विश्राम और मनोरंजन की बात कभी नहीं सोची। लड़कियों पर इतिहास के गम्भीर पाठ की बौछार करने के अतिरिक्त, जिसकी उनके जीवन में कोई उपयोगिता न थी, वह पुस्तकालय में बैठ नोट ले-लेकर एक के पश्चात एक निबन्ध लिखती गयी।

ईसा के तीन शताब्दी पूर्व से ले दो शताब्दी बाद तक भारतीय इतिहास से उसका परिचय अपनी कपड़ों की आलमारी से अधिक था। उसकी अमुक साड़ी धोबी के यहाँ है या आलमारी में, यह उसे याद न रहता। धोबी के साड़ी का रंग या किनारा ख़राब कर देने की भी उसे कुछ चिन्ता न थी; परन्तु जब कोई इतिहासज्ञ सीमान्त की सिन्धु और बुंदेलखण्ड की सिन्धु को एक बताने की धृष्टता करता, वह शिलालेखों, पुराने सिक्कों और पुरातन वंशावलियों के प्रमाणों से भरे निबन्ध लिखे बिना न रह सकती। अपने बिछुड़े परिवार के लोगों की अपेक्षा उसे शुंग और मौर्य वंश के राजाओं के नाम अधिक याद थे। उसके मस्तिष्क में धर्ममित्र-डेमेट्रियस और पुश्यमित्र की विजय और नागार्जुन के जीवन की घटनाओं और उनके प्रभाव की स्मृति भरी थी।

इस अध्यवसाय और तपस्या का फल भी कम नहीं हुआ। उसके ऐतिहासिक निबन्धों के संग्रह इंगलैंड में छपे। जर्मन और फ्रैन्च इतिहासज्ञ भी अपने निबन्धों में प्रोफ़ेसर इन्दु की राय की अवहेलना न कर सकते। प्राचीन इतिहास की कोई नयी पुस्तक प्रकाशित होने पर सम्मति के लिये भेंट स्वरूप उसे भेजी जाती। गरमी की छुट्टियों में कॉलेज की इमारत, विद्यार्थी और दूसरे प्रोफ़ेसर विश्राम करते परन्तु इन्दु पुस्तकालय में नोट लेती रहती या अजन्ता और ऐलोरा की गुफ़ाओं में जा अपनी आँखों से ऐतिहासिक धारणाओं का विश्लेषण करती।

वह अपनी पुस्तक 'यज्ञ-क्रिया में कला का समावेश' लिख रही थी। लगातार सिर दर्द की शिकायत डाक्टर से करनी पड़ी। डाक्टर ने तुरंत सब काम छोड़, ठण्डे पहाड़ी स्थान में एक वर्ष पूर्ण विश्राम लेने की आज्ञा दे दी। कॉलेज से छुट्टी ले इन्दु को मंसूरी आ जाना पड़ा।

भोजन से पहले और भोजन के बाद डाक्टर द्वारा नियत समय तक वह लेटी रहती। रात में अभ्यास से कई घंटे अधिक उसे बिस्तर में पड़े रहना पड़ता। उसके परिश्रमी मस्तिष्क को इतने समय तक नींद

न आती। वह सोचती रहती। अपने नौ वर्ष के अध्ययन और परिश्रम की सफलता की बात सोच उत्साह पाती। उसकी लिखी इतिहास की छः पुस्तकें, कत्थई रंग की मोटी जिल्दों में मढ़ी, करीने से शेल्फ़ पर रखी रहतीं। सुनहरे अक्षरों में पुस्तकों के नाम और नीचे उसका नाम। पिछली दो पुस्तकों पर इन्दु के नाम के साथ छोटे अक्षरों में छपा था Ph.D.

सफलता और सन्तोष के विश्वास से उसका मन सान्त्वना पाता। अध्यवसाय से उसने महत्वाकांक्षी, आई० सी० एस० पिता की यशस्वी सन्तान की कामना को पूर्ण कर दिया था। वह विश्वविद्यालयों की 'अन्तर-प्रांतीय इतिहास समिति' की सदस्य थी। अध्ययन और खोज को उसने जीवन का उद्देश्य बनाया। उसे वह पूरा भी कर पायी। उसके जीवन में असन्तोष और अभाव की अनुभूति क्यों हो! अपनी परिस्थितियों में उत्पन्न होनेवाली अभाव की भावना की आशंका का अवसर न रहने देने के लिये वह तर्क करने लगती....ज्ञान के क्षेत्र में वह अपना प्रयत्न उत्तराधिकार के रूप में छोड़े जा रही है।

उस उजले सुबह बूढ़े माली की बात ने इन्दु की इस सतर्कता को व्याकुल कर दिया। जितनी ही प्रबलता से वह तर्क करती, जाने हृदय की किस गहराई से उठा उच्छ्वास तर्क की इस गढ़ी की दीवारों को भूडोल के धक्के से डगमगा देता। परेशानी में इच्छा होती, औंधे मुँह लेट जाने की। चश्मा उतार उसने पलंग के समीप तिपाई पर रख दिया और मुँह तकिये में गड़ा लेट गयी। तकिये को वह दोनों हाथों से यों ज़ोर से पकड़े थी जैसे नौ वर्ष की अपनी सफलता के विश्वास को हाथों से निकल जाने नहीं देगी। मस्तिष्क में उठे बवण्डर के बीच से दिखाई देने लगता.......दूर सड़क पर ऊँचे वृक्षों की छाया में एक आया सफ़ेद लँहगा-ओढ़नी पहने, एक बच्चा-गाड़ी को धकेलती चली आ रही है....आया गाड़ी को होटल में उसके कमरे की ओर....बम्बई

में उसके फ्लैट की ओर....इलाहाबाद में उनके बँगले के लान में से होती, उसी की ओर ला रही है। गाड़ी में एक सुन्दर नन्हा-सा बालक ....अत्यन्त सुन्दर....जैसे इन्दु स्वयम् दर्पण में अपना ही मुख देख रही हो....वह इतना प्यारा है कि इन्दु के हृदय-तन्तुओं से बँधा है। उसे देख स्नेह के उद्वेग से इन्दु के स्तनों में गुदगुदी होने लगती है, जैसे वे बोझल से हो जाते हैं। वह लपक कर उसे गोद में ले लेती है.... और वह बालक सहसा.......पक्की कत्थई जिल्द बँधी, सुनहरे अक्षरों में ठिकी छः पुस्तकें बन जाता है। शिशु के कोमल मांसल शरीर के स्थान पर काठ सी कठोर उन पुस्तकों की जिल्दें जैसे इन्दु के हृदय में चोट पहुँचा देती हैं।

छटपटा कर वह करवट ले लेती....क्यों कर उसे चैन मिले? औंधे मुँह लेटने के अतिरिक्त और उपाय नहीं। फिर वही कार्नेशन की क्यारी दीखने लगती। सूखी फुनगियों और फूलों का मसल कर मिट्टी में मिला दिया जाना। नई स्वस्थ टहनियों को मिट्टी में दबा दिया जाना.... नये कल्ले फूटेंगे........इनमें अब फूल थोड़े ही खिल सकते हैं........पुराने से नया पैदा होता है....ऐसे ही सिलसिला चलता है। इसका मतलब ....मेरा सिलसिला समाप्त है। मैं सिलसिले की टूट गयी कड़ी हूँ....। जैसे नौ वर्ष का अध्यवसाय और परिश्रम पानी में बहा चला जा रहा है....मेरे इस सिलसिले को कौन कायम रखेगा? मेरी महत्वाकांक्षा का फूल बीज बिना नष्ट हो जायगा। उसने अनेक करवटें बदलीं। अनेक बेर तकिये में मुख छिपाया और सीधे लेट गयी। छिनते जीवन की निराशा में वह क्या करे?

डाक्टर ने यंत्र से फेफड़ों की गति और अवस्था देखकर कहा है, उनकी दीवार झीनी पड़ रही है। शरीर में रक्त की निर्बलता से जीवन शक्ति क्षीण हो रही है।....कार्नेशन में कल्ले फूट कर सिलसिला जारी रखने से पहले हेमन्त उसे समाप्त कर देगा....वह क्या करे? मस्तिष्क

में बढ़ती उत्पणता कह रही थी—वह सभी कुछ करने को तैयार है.... परन्तु वह कर क्या सकती है ? उसकी विद्वत्ता, उसके भारी ट्रंक के खानों में भरे हुए नोट ; वह कुछ भी नहीं कर सकती ? स्वावलम्बी और आत्म-निर्भर बन कर भी जीवन निराश्रय हो रहा था। जीवन के क्रम का, फलने फूटने के सिलसिले का अवलम्ब पुरुष....। पुरुष से पाये बिना वह कुछ पा नहीं सकती। जीवन का वह सिलसिला पुरुष से ही पाया जा सकता है जो उसके मुर्झा कर गिर जाने पर भी उसके जीवन के क्रम को जारी रख सकेगा। पुरुष के बिना वह असहाय है। उसे अपना सिलसिला जारी रखना है। वह पुरुष को करना होगा। पुरुष यह करेगा क्यों नहीं ? वह है किस लिये ? दारुण निराशा और खिन्नता से बल खा, अनेक करवटें ले वह उठ खड़ी हुई। नित्य की भाँति भ्रमण का पथ्य लेने बाहर जाने के लिये उसने ड्राइंगपीस की ओर नहीं देखा। परिष्कार और प्रसाधन में समय नष्ट करने की आदत न होने पर भी औचित्य का विचार उसे था। उस समय वह भी नहीं। केशों को जूड़े में समेट, साड़ी बिना बदले ही वह बाहर निकल गयी जैसे घर के आँगन में ही किसी वस्तु की खोज में जा रही हो।

मोटे काँच के चश्मे में से खोजती दृष्टि से वह देखती चली जा रही थी। सड़क पर कुली थे, नीची हैसियत के लोग थे। पुरुष को खोजती इन्दु की दृष्टि उन्हें न देख रही थी, जैसे वे भिन्न प्राणी थे। अपनी तुलना में उन्हें कभी उसने एक नहीं समझा। वह देखती रही सम्भ्रांत पुरुष को, जो महिला का जोड़ा है। उसकी स्मृति में नाच रहा था, प्रौढ़ आयु का एक अत्यन्त सम्भ्रांत स्थिति का विद्वान ग्रन्थकार।

एक मास पूर्व दर्शन शास्त्र के एक महापण्डित के मंसूरी आने पर उनके स्वागत में दी गयी चाय की दावत में इन्दु को भी निमन्त्रित किया गया था। वहीं उसने विद्वान का परिचय पाया था। मुस्किरा होके-

होते इन्दु लम्बी राह और चढ़ाई चढ़ हाँपती हुई इन सम्भ्रांत और विद्वान पुरुष के बँगले के बरामदे में जा पहुँची।

महिला-अतिथि का आना सुन सम्भ्रांत विद्वान तुरंत स्वयम् बाहर आ इन्दु को बैठक में लिवा ले गये। अतिथि का विह्वल भाव देख सहायता की उत्सुकता से उन्होंने पूछा—'मेरे योग्य सेवा?'

इन्दु सहसा कुछ कह न सकी। एक दीर्घ श्वास उसके शरीर को कँपाता हुआ नीचे बिछे फर्श पर फैल समीप खड़े सम्भ्रांत पुरुष के चरणों को छू गया। विद्वान ने कुछ द्रवित स्वर में सहायता कर पाने की प्रार्थना दोहराई।

सिर झुका हाथों की उँगलियाँ तोड़ इन्दु ने काँपते हुए स्वर में कहा—'मैं-मैं....'—उसका कंठ रुँध गया। भद्र पुरुष के साहस दिलाने पर दृष्टि उनके मुख की ओर उठा इन्दु ने स्पष्ट स्वर में कहा—'मैं.... सन्तान चाहती हूँ।'

अपने कानों पर विश्वास न कर सम्भ्रांत पुरुष प्रश्न के भाव से देखते रह गये। अधिक स्पष्ट और ऊँचे स्वर में इन्दु ने कहा—'मैं एक सन्तान चाहती हूँ। अपने आपको समाप्त होने से बचाने के लिये....अपना क्रम जारी रखने के लिये....।'

धुँधले प्रकाश में भी सम्भ्रांत पुरुष के प्रौढ़ चेहरे पर छा जानेवाली परेशानी स्पष्ट हो गयी। वे मौन रह गये। अपने आपको संयत कर उन्होंने उत्तर दिया—'आपकी तबीयत ठीक नहीं है। आपके स्थान तक पहुँचाने का प्रबन्ध कर दिया जाय? आप घर लौट कर विश्राम कीजिये।'

अपनी कुर्सी से बिना हिले इन्दु ने उनकी आँखों की ओर दृष्टि कर दृढ़ता से उत्तर दिया—'नहीं मैं अब बिल्कुल स्वस्थ हूँ....मैं सन्तान चाहती हूँ....इसीलिये आपके पास आयी हूँ।'

सम्भ्रांत पुरुष के ऊँचे माथे पर पसीने की तरावट झलक आयी।

समय के प्रभाव से चेहरे की विवर्ण हो गयी त्वचा पर संकोच की लाली छा गई। कुछ क्षण चुप रह कर विद्वान ने कहा—'परन्तु ऐसा मंत्र और वरदान दे सकने की शक्ति मुझमें नहीं।' बैठक छोड़ वे भीतर चले गये।

× × ×

तिरस्कृत और अपमानित हो इन्दु संध्या के झुटपुटे अँधेरे में अपने होटल की ओर लौटी आ रही थी। पुरुष की संकीर्णता और अहंकार से उसका हृदय और मस्तिष्क जल रहा था। इस ज्वाला ने दृष्टि के सामने से अभ्यास और संस्कार का पर्दा जला दिया। उसे दिखाई देने लगा, पुरुष की क्या कमी है !....उसका रिक्शा खींचनेवाला, उसका बोझ ढोनेवाला, उसका खाना बनाने वाले, सब पुरुष हैं। चार-चार आने, आठ-आठ आने में जो पुरुष बिकता हो, उसका यह अहंकार और स्पर्धा ! पुरुष की सेवा और शक्ति को उसने जब चाहा तब ख़रीदा है। पशु की भाँति उसका उपयोग किया है। आनों और रुपयों में बिकनेवाले पुरुष की यह स्पर्धा और मजाल ! अब उसे क़दम-क़दम पर पुरुष दिखाई दे रहे थे। दाँत पीस कर होंठ दबाये तेज़ी से साँस लेती हुई वह होटल की ओर चली जा रही थी।

अपने कमरे में लौट बिजली का प्रकाश किये बिना ही मेज़ के दराज़ में टटोल कर उसने ट्रंक की चाबी ढूँढ़ी। ट्रंक खोल स्मृति से नोटों का बण्डल उठा लिया। ट्रंक को बन्द करने की चिन्ता छोड़, अपने कमरे के बरामडे में खड़ी, वह चारों ओर देख रही थी; किस ओर कौन पुरुष दिखाई देता है ?

× × ×

विलासम होटल के मालिक अपने तीन लड़कों, चार लड़कियों और उनकी माता सहित होटल की इमारत के ही एक भाग में रहते थे। होटल में किसी प्रकार का अनाचार या बदनामी का कोई कारण वे किसी

भी अवस्था में सह नहीं सकते थे। इस विषय में वे सिद्धान्त रूप से दृढ़ थे। होटल की आमदनी का विचार भी उनकी आचार निष्ठा को ढीला नहीं कर सकता था।

किसी पुरुष का साथ न होने पर भी उन्होंने इन्दु को उसके पद और नाम का विचार कर होटल में स्थान दे दिया था। उसका निर्लिप्त और नियमित जीवन देख, वे उसका आदर भी करने लगे थे। परन्तु उस दिन, सुबह उठते ही जब होटल के दो नौकरों ने अपने आचरण की सफ़ाई में इन्दु की शिकायत की और प्रमाण में पर्याप्त रुपया भी नोटों के रूप में पेश कर दिया, मालिक के लिये दुःखी और क्रुद्ध होने के सिवा चारा न था।

आवेश में उन्होंने नौकरों की ज़बानी ही इन्दु को, तुरंत हिसाब साफ़ कर, होटल से बाहर निकल जाने की आज्ञा भिजवा दी; वर्ना वे पुलिस बुलाकर सामान बाहर फिकवा देंगे। अपने दफ़्तर की खिड़की के सामने बैठे वे उसके होटल से निकल जाने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

घर से बच्चों की माँ के अनेक बुलावे आने पर भी वह उस समय तक भीतर न जा सके जब तक कि उन्होंने अपनी आँखों से न देख लिया कि इन्दु कुलियों के सिर पर असबाब उठवाये, सिर का आँचल सँभालती हुई सड़क पर चली जा रही है।

२

## अपनी करनी

जेल का फाटक जीवन का 'उस पार' है। लोहे की मोटी-मोटी छड़ें, भारी-भारी ताले और ज़ंजीरों के बन्द होने और खुलने का शब्द फाटक की मेहराब से टकरा कर आधा फर्लांग दूर तक की वायु को कंपा देता है। इस फाटक की अभेद्य शक्ति को दुरतिक्रम्य बनाने के लिये भयावनी खाकी पोशाक में, संगीन चढ़ी बन्दूकें लिये मनुष्य खड़े रहते हैं। इनकी दृष्टि में, प्रत्येक अंग-भंगी में साधारण मनुष्य के लिये दमन और भय की ललकार भरी रहती है। जल्लाद की भावना का आतंक वातावरण में समाया रहता है। इस फाटक को पहली दफ़े लाँघते समय अभियुक्त को जान पड़ता है, उसके जीवनसूत्र पर गँड़ासा गिर गया।

'मनुष्य' कुछ भी नहीं परन्तु उसकी व्यवस्था महान् और सर्वशक्तिमान है। यह व्यवस्था जब मनुष्य को अभियुक्त ( मुलज़िम ) करार देकर इस बात पर विचार करती है कि उसे जीवित रहने का अधिकार है या नहीं, उसे समाज में रहने का अवसर दिया जा सकता है या नहीं; तब इन विचाराधीन मनुष्यों को इस फाटक के भीतर धरोहर की भाँति बन्द कर दिया जाता है। व्यवस्था को अपनी स्वीकृति से शक्ति देने

वाले मनुष्य व्यवस्था के शिकार बन जाते हैं। अभियुक्त और अपराधी बना दिये जाने पर, मनुष्य का रूप बना रहने पर भी, मनुष्य मनुष्य नहीं रह जाता। मनुष्य का गुण—इच्छा और निर्णय करने का अधिकार उसे नहीं रहता।

ऐसे मनुष्यों के सम्बन्ध में विचार करने के लिये व्यवस्था जब उन्हें पुकारती है तो लोहे की जंजीर और सलाखों से जकड़, सर्वथा विवश और असमर्थ बना उन्हें न्याय के महामहिमामय मंच के सम्मुख उपस्थित किया जाता है। उनके सम्बन्ध में विचार अधूरा रह जाने पर या उनके अपराधी ( मुजरिम ) करार दे दिये जाने पर उन्हें बँधे हुए पशुओं की भाँति या जीवित नगों की भाँति गिन-गिन कर उस फाटक के पार सुरक्षित कर दिया जाता है। हाथ लोहे की जंजीर से बँधे, पैर लोहे की बेड़ियों में जकड़े, दोनों पैरों को एक दूसरे से बाँध कर पैरों की गति को रोक रखने वाली लोहे की छड़ों को हाथ से सँभाले, गिन-गिन कर यह मुलजिम फाटक के भीतर समेट लिये जाते हैं। भीतर आते ही कपड़ों और शरीर की पड़ताल होती है। शरीर को नितान्त आवश्यक रूप से ढँके रहने वाले कपड़ों के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु उनके पास नहीं रह पाती। वहाँ सभी कुछ वर्जित और अपराध है। खाने-पीने की कोई चीज़, तम्बाकू-सुपारी से लेकर कागज, कच्चे सूत और लोहे की पत्ती सभी वहाँ घातक और दण्डनीय पदार्थ हैं।

अपराधी शक्तियां अन्धकार में प्रबल हो जाती हैं। इसलिये संध्या के झुट-पुटे से पहले ही इन ख़तरनाक मनुष्य-जीवों को तौल कर दाल-रोटी देने के बाद, गिन कर, एक बेर फिर नंगाझोली ले पक्की ईंट और जंगलों से बने मकाननुमा-पिंजरों ( बैरिकों ) में बन्द कर दिया जाता है। इतना कुछ करके भी व्यवस्था निश्चिन्त नहीं हो पाती। इसके बाद पहरा लगता है। बैरिक के भीतर पहरा, बैरिक के बाहर पहरा, बैरिकों को घेरने वाली चार-दिवारी के भीतर पहरा और इस चार-दिवारी के

बाहर संगीन का पहरा। हर दस मिनट के बाद इस पहरे की रिपोर्ट.... 'ताला-जंगला-लालटैन-इतने कैदी, फलाँ नम्बर बैरिक, सब ठीक है हुज़ूर!' इसके बाद रात के प्रत्येक पहर में लोहे के भारी जंगलों की प्रत्येक सलाख को ठोक-पीट कर देख लिया जाता है कि वह मजबूत है। इस आशंका और खबरदारी के बाद भी चार-दिवारी की तीन-तीन परिधियों और जंगलों के भीतर बन्द 'मनुष्य' का भय जंगले और दीवारें बनाने वाले 'मनुष्य' को बना ही रहता है। कितना ही असमर्थ बना दिये जाने पर भी मनुष्य मनुष्य ही तो है!

× × ×

बैरिक बन्दी के बाद जमादारों के बैरिक के अहाते (चक्कर) से निकलते ही जादू की किसी चुटकी से वे सब वस्तुयें बैरक में निकल आती हैं जो जेल की दुनिया में निषिद्ध हैं। जिनका उपयोग दण्डनीय अपराध है। बीड़ी, तम्बाकू, चिलम, ताश के पत्ते, रुपया पैसा, अफ़ीम, भाँग या चरस की गोली; अंटी में दाम या दिमाग़ में सूझ होने पर कुछ भी उस दुनिया में अप्राप्य नहीं।

फाटक का वह प्राण-शोषक और असह्य आतंक जेल के भीतर की बैरिकों तक पहुँचते-पहुँचते सह्य होने लगता है। बैरिक बन्द होने पर किसी कोने से मूंज की रस्सी के तोड़े से धुयें की क्षीण रेखा उठने लगती है। कहीं से एक चिलम निकल आती है। उसके बाद दम लगाकर खाँसने का शब्द, खुश्क तम्बाकू की सोंधी-सोंधी गन्ध, हथेली पर सुरती चूना मलने की फट-फट तब निचले ओठ में सुरती दबा, पीक को सँभाले, मुख को टेढ़ा कर बोली गई बात!

नये आये अभियुक्तों (हवालाती) के अपराध और व्यक्तित्व का परिचय होता है और उस रोज़ सज़ा पा अपराधी (मुजरिम) क़रार देकर भीतर जेल में चालान हो जाने वालों की चर्चा। अभियुक्त एक दूसरे के मामले की पेचीदगियों को ध्यान से सुनते हैं। अपनी सुनाते

हैं और उस पर जिरह होती है। यह जिरह अगले दिन कचहरी में काम आती है। ताजीरात हिंद की सभी दफायें और हाईकोर्टों की सभी नज़ीरें अनुभवी हवालातियों की जिह्वा की नोक पर मिलेंगी। साहस से अपराध करना, धीरज और धैर्य से अदालत लड़कर छूट जाना अपराधी की दुनिया में गौरव की बात है। सज़ा वहाँ भाग्य का फेर है। सज़ा के डर से मिन-मिनाना वहाँ हिकारत की नज़र से देखा जाता है। छः महीने-साल की सज़ा पाने वाले वहाँ रोते हैं। विडम्बना से उन्हें लुटिया-चोट्टे पुकारा जाता है। दस-बारह बरस या उम्र क़ैद की सज़ा पाने वाले आँखों में बेपरवाही लिये सिर ऊँचा रखते।

× × ×

दुनिया के ओछे और छिछोरे जेल में भी पहिचान लिये जाते हैं। उनकी फ़ितरत और शेख़ी वहाँ भी छिपी नहीं रहती। ऐसे तुच्चों के लिये जेल की आम कहावत है:—'घर तो सभी के छप्पर पर बावन बीघे पौदीना होता है।'

बिन्दा पासी गहरे और गम्भीर आदमी थे। दुनिया में उनका बड़ा नाम था। वे अपने गिरोह के सरग़ना थे। सरकार और पुलिस उनके नाम से थर्राती थी। उन्हें गिरफ्तार करने कप्तान साहब पूरी फौज लेकर गये थे। उनका खौफ़ इतना था कि बैरिक में भी उनकी बेड़ियों में, दो पांव के बीच,लोहे का डंडा पड़ा रहता। जेलर और बड़े साहब तक उनका अदब मानते थे। दुनिया में उनके यहाँ बीसों बन्दूकें और घोड़ियाँ थीं। उनके खेमे चलते थे। खेमे में पतुरिया नाचती। पर जेल में वे ऐसे सीधे रहते जैसे, गाय! न किसी से कुछ मतलब, न झगड़ा! कान डाले अपनी इज़्ज़त बचाये थे। बड़े प्रेम से रामजुहार करते और ब्राह्मण-पण्डितों को पाँय लागन कहते। जँगले के सामने की हवादार जगह के लिये, चुटकी भर नमक-मिर्च या पत्ती के लिये झगड़ते उन्हें किसी ने नहीं देखा। अदालत से लौटे, छः रोटी जैसे-तैसे खाई

और टाट-फट्टे पर तसला सिर के नीचे रख लेट गये। पर सब उन्हें मानते थे और दद्दू कह कर पुकारते थे !

× × ×

उस रोज़ बैरिक में कुछ गुम-सुम-सी उदासी थी। सुतई दद्दू के गिरोह का आदमी था। अपने टाट-फट्टे से उठ दद्दू की ओर क़दम बढ़ाते हुए उसने कहा—'दद्दू खामखा जुर्म कबूल गये........हमारे जानते बच्चेंगे नहीं !'

अदालत से लौटने पर ही बात फैल गई थी कि अदालत में गवाही देने आई एक लौंडिया रो दी तो दद्दू ने अपना जुर्म कबूल लिया। कतल-डकैती का जुर्म है........फाँसी हो जायगी। अदालत ने कल ही फैसले की तारीख़ दी है।

दद्दू बैरिक से चले जायँगे, उन्हें फाँसी की सज़ा हो जायगी। इस खयाल से सभी लोग उदास हो गये। सुतई की देखा-देखी और लोग भी दद्दू के टाट-फट्टे के चारों ओर सिमिट आये। दद्दू उठकर बैठ गये और हाथ जोड़ सब लोगों से बैठने को कहा।

फत्ते पुराना आसामी था। बैरिक में बीड़ी का रोज़गार कर गुजर चलाता। पैसे की आठ बीड़ी उससे जब चाहे मिल जातीं। उसका तोड़ा हरदम सुलगता रहता, चाहे बड़े साहब की रौंद हो। फत्ते ने बीड़ी सुलगाई और बायाँ हाथ दाईं कोहनी से लगा दद्दू के आगे पेश की। 'जयराम जी की भाई, पियो, हम पीते नहीं !' दद्दू ने जवाब दिया। रग्घू पांडे ने सुरती मली और फटकार कर हाथ उनके सामने कर दिया। दद्दू ने चुटकी नहीं भरी। पाँयलागन कर दाईं हथेली बढ़ा ले ली और फिर सब के सामने हाथ कर बची हुई फाँक ली।

भजन ने घोंट्ट समेट कर बात शुरू करने के लिये कहा—'दद्दू ने खुद ही जुर्म क़बूल लिया वर्ना इजलास की क्या ताब थी कि सज़ा हो जाती। अपने वकील साहब तो ऐसे लड़ते हैं जैसे कलँगी वाला

मुरगा ! सच्चे ही रक़म हलाल करता है भाई। पर दद्दू ने ग़रीब को फटकार दिया कि अपना-सा मुँह लेकर रह गये।'

सुरती होंठ में दबाकर दद्दू ने कहा—'भाई बात ही ऐसी आन पड़ी। बात का सवाल था और जो बात का नहीं, अपने बाप का नहीं। हरिया साले की निगाह बद थी। उसका पाप ले डूबा। हम उसे भाई की तरह मानते थे। सदा समझाते रहे कि जागा ( डाके ) में अधर्म का फल बुरा होता है। जिसका धन लिया, उसकी इज्ज़त पर हाथ मत डालो।'

भजन ने करवट से होकर कहा—'ठीक तो है। आदमी या तो इज्ज़त ले या धन ले !'

स्वीकृति के भाव से उसकी ओर देख दद्दू ने कहा—'हम तो इस जागा में उसे संग ले जाने को तैयार नहीं थे। पर पूजा के वखत उसने भवानी ( बन्दूक ) छू कर कसम खाई कि निगाह बद नहीं करेगा........' एक वज़नी गाली देकर उन्होंने कहा—'साले का हौसला तो था........हमें बड़े भाई की तरह मानता था........पर आँख में सील नहीं था।'

रहमान भी गिरोह का आदमी था। बोला—'कोरट साहब ने लौंडिया को कैसा तोते की तरह पढ़ा रखा था। बोली—रात गये तक हम और बुआ अचारी बीनार रही थीं। लालटेन बल रही थी। छत से दो आदमी आँगन में कूद आये।—दद्दू की तरफ़ इशारा कर लौंडिया ने कहा—यहीं भैया और वह डाकू जो मारा गया, यही लोग थे। हम और बुआ चिल्लाने लगीं तो बन्दूक दिखा कर इन्होंने कहा—जो बोलेगा गोली मार दी जायगी और ड्योढ़ी का दरवाज़ा खोल दिया। सब डाकू घुँस आये। फिर इन्होंने कहा, मेहरिया सब एक तरफ़ हो जायँ और मर्दों के हाथ-पाँव बाँधकर डाल दो ! किसी औरत के जिस्म से गहना न उतारा जाय और कोई औरत को हाथ न लगाये। बुआ

करधनी उठाकर पहिनने लगीं तो इन भैया ने कहा—खबरदार छूना नहीं! जो तुम्हारे बदन पर है, तुम्हारा है और जो दूसरी चीज़ पर हाथ लगाया तो हम गोली मार देंगे।

'ये भैया दो-तीन आदमियों को ले, भीतर की कोठरी में जगह खुदवा रहे थे और दो आदमी बन्दूक लिये हम लोगों के पास खड़े रहे। तब वह डाकू जो मारा गया उसने हमसे कहा—तुम कपड़े में जेवर छिपाये हो, अपनी जगह से हटो! हम उठ के एक तरफ़ खड़ी हो गईं। उसने कहा—रसोई में गागर कहाँ गड़ी है, चलकर दिखाओ! ........बन्दूक दिखा के हमें वह रसोई में ले गया।

'लड़की को हिचकते देख कोरट साहब ने कहा—हाँ, हाँ, रसोई में ले गये फिर?

'लौंडिया शरमा के कहने लगी—तब वह डाकू जो मारा गया, उसने हम पर बुरी निगाह की। हम चिल्लाईं तो ये भैया दौड़े आये—इन्होंने उस डाकू को बन्दूक मार हमें बचा लिया। —लौंडिया नज़र नीची कर चुप हो गई।'

'तब हमारे वकील साहब ने जिरह की—जो आदमी मारा गया उसने तुम्हें रसोई में ले जाकर बुरी नज़र की?—लौंडिया ने मुँह हिलाकर हामी भरी। तब वकील साहब ने पूछा—बुरी नज़र कैसी होती है? बुरी नज़र से तुम्हारा क्या मतलब?'

'लौंडिया गरदन झुकाकर चुप खड़ी रही। वकील साहब ने फिर पूछा—तुम पर गाँव के किसी आदमियों ने बुरी नज़र की है?........बुरी नज़र कैसी होती है........भली नज़र कैसी होती है? तुम्हें कौन नज़र अच्छी लगती है?—लौंडिया चुप! उसके मुँह से बोल नहीं फूटा। तब कोरट साहब अदालत से बोले—हुज़ूर इस सवाल का मुकदमे में क्या ताल्लुक? यह तो महज़ गवाह को परेशान किया जा रहा है?

'अपने वकील तड़ाक से बोल उठे—हुज़ूर, गवाह का कहना है कि मक़तूल ने उस पर बुरी नज़र की। इससे मुलज़िम ने उसे गोली से मार दिया। यह क़िस्सा सरासर पुलिस का गढ़ा हुआ फ़साना है। क़त्ल की बिना इस लड़की की बेआबरूई की कोशिश बताई गई। इसलिये साबित होना चाहिये कि बेआबरूई की कोशिश की गई। बेआबरूई की कोशिश की गई, यह बात सिर्फ़ लड़की के बयान पर मबनी है। इसलिये ज़रूरी है कि इस बात पर जिरह हो। लड़की के इस बयान पर मुलज़िमों की ज़िन्दगी-मौत का दारमदार हो सकता है।

'अदालत ने हुकुम दिया कि लौंडिया जिरह का जवाब दे। और वकील साहब ने फिर सवाल किया—बुरी नज़र क्या होती है जी?

'काँपते-काँपते लौंडिया ने कहा—वो ऐब करना चाहता था।

'वकील साहब ने पूछा—ऐब करना चाहता था। इससे तुम चिल्ला दीं? और इससे पहले जब तुमसे किसी ने ऐब किया तब भी हमेशा तुम चिल्ला देती थीं?........लौंडिया रो पड़ी।

'तब दद्दू अपनी जगह से बोल उठे—वकील साहब जिरह रहने दीजिये। हमें सफ़ाई नहीं देनी। आप बिटिया को तंग न कीजिये। और अदालत की ओर मुख़ातिब हो दद्दू ने कहा—हुज़ूर, बिटिया की जिरह की ज़रूरत नहीं। हमने जुर्म कबूल लिया। हरिया की आदत बुरी थी। पहले भी उसने ऐसा किया। हम उसे सदा बरजते रहे। इसी से हम हरिया को संग ले जाना नहीं चाहते थे; पर उसने भवानी (बन्दूक) छूकर कसम खाई कि निगाह बद नहीं करेगा। और फिर उसने बिटिया पर हाथ डालने की कोशिश की। हमने आकर पूछा तो उसने कहा—इसने सोने का जेवर छिपा लिया है। पर हमने देखा, वह झूठ बोल रहा था। हुज़ूर, डाकू का भी ईमान होता है। डाकू दूसरे का धन लेता है, इज्ज़त पर हाथ नहीं डालता। फिर कन्या दुर्गा का रूप होती है। हमने हरिया को गोली मार

दी और हुज़ूर, हम मौत के किनारे खड़े हैं। भगवान् को साच्छी जान कर कहते हैं—बिटिया का धरम कायम है। हमने जुर्म कबूल लिया ताकि बिटिया को परेसान न किया जाय।

'अदालत, कोरट और वकील सब दंग रह गये। पर अदालत ने लौंडिया को पुकार कर पूछा—देखो, तुम कहती हो, मुलजिम ने ही मरने वाले डाकू को गोली मारी थी?—लौंडिया ने सिर हिला कर हामी भरी। तब अदालत ने फिर पूछा—हो सकता है, रसोई की खिड़की में से किसी दूसरे ने मक़तूल को गोली मार दी हो?

'लौंडिया ने आँखों के आँसू पोंछ कर जवाब दिया—नहीं, भैया ने ही बन्दूक चलाकर हमें बचाया।

'अदालत ने एक बेर फिर पूछा—तुमने मुलज़िम को बन्दूक चलाते अपनी आँखों से देखा?—लड़की ने हामी भरी कि हाँ।

'तब अदालत ने गवाह को बाहर जाने का हुक्म दिया। लौंडिया बाहर जा रही थी कि किसी ने कहा—अच्छा बदला दिया नेकी का!.... औरत की जात है न?....ग़रीब को फाँसी लगवा दी!

'लौंडिया ने वह बात सुन ली और चीख उठी—हाय भैया!—और अदालत के दरवाज़े में गिर पड़ी।'

बैरिक के सी० ओ० ( कैदी जमादार ) ने जंगले से मुँह लगाकर रपट बढ़ाई—'ताला, जंगला, लालटैन, इतने कैदी, हवालाती बैरिक सब ठीक है हुज़ूर!'—बैरिक में सन्नाटा छा गया।

बिरजू की आदत थी कि तसला बजाकर कजरी गाता रहता पर वह भी चुप था। खपरैल की ऊँची छत की कड़ी में लोहे की छड़ से लटकी लालटैन टिमटिमा रही थी और सब लोग दद्दू के चारों ओर चुप बैठे थे। एक बोझ-सा सबके दिल और ज़बान पर बैठ रहा और दहशत-सी छाई रही। दद्दू की बहादुरी के ख़याल में और अदृश्य में खड़ी फाँसी की छाया से सब स्तब्ध हो रहे थे।

सबको चुप देख दद्दू ने कहा—भाई, अपनी-अपनी करनी है। अपनी करनी से कोई कैसे बच सकता है? हम साले हरिया को भाई से बढ़कर मानते थे। उसकी करनी सामने आई। उसे लेकर डूबी और हमें भी लेकर जायगी!'—रात बढ़ती देख, सब लोगों की ओर हाथ जोड़ उन्होंने कहा—'अब सब भाई आराम करें।'

तब अपने फट्टे पर लेट टिम-टिमाती लालटैन की ओर देख हम सोचने लगे—अपनी करनी से कोई कैसे बच सकता है! हरिया ने करनी का फल पाया। उसकी करनी का फल देने में दद्दू की करनी अपराध बन गई, भगवान की इच्छा से............।

---

३

## तर्क का तूफ़ान

'देखो दोस्त, शाम को आना ज़रूर !........ऐसा न हो कि टाल जाओ ! तुम्हारी भाभी बुरा मान जाँयगी और मैं भी नाराज़ हो जाऊँगा।' कुरसी से उठते हुए सिनहा ने अवध का हाथ अपने हाथों में दबा अत्यन्त आग्रह से फिर अनुरोध किया—'आओगे न ?....वचन दो !'

'हाँ-हाँ, आ जाऊँगा।' आग्रह की तीव्रता से झेंपते हुए अवध ने उत्तर दिया। मन उसका चाह रहा था, किसी तरह वह संध्या के निमंत्रण से बच पाता। सिनहा और उससे भी अधिक मिसेज़ सिनहा को बैठकबाजी का शौक़ है। अवध के अनेक परिचित निमंत्रण में आयेंगे। गाना-बजाना, बहस, मज़ाक और सब तरह की हू-हलक वहाँ रहेगी। साधारणतः ऐसी बैठकों से अवध को भी रुचि थी। इन महफ़िलों में वह चमकता भी खूब। चुभता मज़ाक करने और बात से बात निकालने की उसकी आदत जो थी।

इधर कुछ समय से उसका मन महफ़िलों से उच्चट-सा गया था। वह उनसे भागने लगा। जब दूसरे लोग कहकहे लगा रहे हों, आप से भी आशा की जाती है कि उसमें सहयोग दें। यदि मन के बोझ के कारण आप दाँतों तले अँगूठा दबाये, छत की धन्नियों की ओर देखते रहना

चाहते हैं तो महफ़िल में आपका क्या काम ? इससे कहीं अच्छा आप संध्या के झुटपुटे में, सूने पार्क की बैंच पर बैठ, घने वृक्ष की शाखाओं में से तारों की ओर देख-देख, मन में उठती दुख की भाप लम्बी साँसों के रूप में चैन से आकाश की ओर छोड़ते रहिये।

इसी कारण, यानी महफ़िल में ठीक से सट न पाने की वजह से, अवध महफ़िलों से कतराने लगा। एक समय किये मज़ाक का वह खुद शिकार बन गया। किसी मित्र के सिगरेट न पीने पर चुटकी ले उसने कहा था—'यह तम्बाकू का नहीं, ग़म का धुआँ पीते हैं।'

आश्चर्य से पूछा गया—'कैसे ?' आपने उत्तर दिया—'ग़म के सिगरेट में मन को सुलगा दुख के कश खींचते हैं और आहों का धुआँ छोड़ते है। ग़म से उठने वाली घटाओं के मुक़ाबिले बेचारी सिगरेट से उठी धुयें की मामूली रेखा का क्या मुक़ाबिला ?' वही ग़म के सिगरेट अब अवध स्वयम् पीने लगा।

महफ़िल की रौनक के बजाय उसे अच्छा लगता, अपने काम से लौट सूर्यास्त के बाद चुपचाप नीले आकाश या उमड़ते मेघों की ओर देख-देख सोचते रहना,........हृदय का दुख तीखा होते-होते एक दिन हृदय में छिद्र कर देगा। तब जीवन की यह छोटी सी नाव अनुभव के समुद्र में डूब जायगी। तब न दुख रहेगा न सुख....न कोई चाह और न चाह से उठने वाली आह !'

मित्र लोग मन-बहलाव के लिये उसे जब अपनी ओर खींचते, उसका दुखी मन कराह उठता....'क्या लुत्फ़ अंजुमन का जब दिल ही बुझ गया हो !' ऐसी मानसिक अवस्था में भी सिनहा ने अपनी और अपनी स्त्री की क़समें दे, उसे अपने यहाँ चाय पीने आने के लिये विवश कर दिया।

उस महफ़िल की बहस और मज़ाक से अवध को कोई दिलचस्पी न

थी। परन्तु जब एक गीत सुनाने का प्रस्ताव लता से किया गया, वह चिन्ता की ऊँघ से जाग उठा।

लता गाती अच्छा है। उसकी आवाज़ में लोच है। आवाज़ को ऊँचा उठाने के लिये कलेजे में दम है। वह स्वयम् हँसमुख और निःसंकोच है—एक हद तक मुँहफट। परन्तु यह खटकता नहीं क्योंकि इस व्यवहार में चोट करने का भाव नहीं, घायल की निराशा है जो करुणा चाहती है। गीत और ग़ज़लें जो लता को याद हैं निराशा, करुणा और विरह का संताप लिये हुये। गीत के भाव के अनुरूप उसके स्वर में भी दर्द की एक झंकार रहती है। इसीलिये उसका गाना हृदय में गहरा उतर जाता है केवल कानों तक ही नहीं रहता।

गाने का प्रस्ताव होने पर लता ने निःसंकोच पूछा—'क्या सुनियेगा?' और फिर छत के कोने की ओर दृष्टि स्थिर कर, कुरसी की बाज़ू पर अँगुलियों से ताल दे, गुनगुनाना शुरू कर दिया और गा उठी—'जिसे याद करते हैं हम ज़रूर, हमें दिल से उसने भुला दिया........'

गाने का भाव और स्वर की लहर अवध के मन की भावना में समा गई। हृदय लय पर डोलने लगा। उसे जान पड़ा लता के कोमल कंठ और दर्दभरे स्वर में स्वयम् उसके मन की व्यथा प्रकट हो रही है। एक साँस बहुत गहराई से उठ सीने में रह गई। तन्मय हो वह लता के मुख की ओर देखता रहा जैसे मुख से निकलते हुये राग के भाव को प्रत्यक्ष देख पा रहा है। उसकी दृष्टि के सम्मुख मौजूद था, दुख से छिदा स्वयम् अपना हृदय। श्वास रोके वह तन्मय सुन रहा था और लता गा रही थी:—

'तेरी चश्मे मस्त ने साक़िया, मुझे क्या से क्या बना दिया।
मुझे कुछ रही न अपनी ख़बर, कोई जाम ऐसा पिला दिया॥'

अवध का हृदय सहसा तड़प उठा। दूसरे क्षण उस तड़प को

थकान से निढाल हो वह निश्चेष्ट-सा हो गया। ग़ज़ल समाप्त हो जाने पर जब वाह-वाह और खूब-खूब का कोहराम मच रहा था, वह लय की लहरों में गोता खा चुप रह गया।

जो भी मज़ाक करता है, अवध का सहयोग पाने की आशा से उसकी ओर देखता है। इसलिये घायल पशु की भाँति, व्यथा में एकान्त की शरण ले पाना भी उसके लिये सम्भव नहीं। बिना सुने-समझे भी उसे निरर्थक सिर हिला देना या मुस्कान का नाट्य कर देना पड़ता है, सावधानी और व्यावहारिकता के चाबुक से मन को सजग कर देना पड़ता है।

ज़फ़र की भावपूर्ण ग़ज़ल के मुक़ाबिले में 'सिकन्दर' फ़िल्म के संग्राम-गीत (Marching Song) 'ज़िन्दगी है प्यार से प्यार से बिताये जा, हुस्न के हुज़ूर में अपना दिल लुटाये जा।........के बेतुकेपन को तौल यासीन कह रहा था—'जंग के मैदान और हुस्न के हुज़ूर में समन्वय क्या?'

सिनहा ने कहा—'वाह साहब, समन्वय है कैसे नहीं? सिपाही को दुनिया में दो ही चीज़ों से तो मतलब है, जंग और हुस्न!........यह उसकी बेफ़िक्री की तस्वीर है........।'

यासीन यों चुप रह जाने वाला नहीं। अवध की ओर देख उसने कहा—'बेफ़िक्री और जंग में ही अगर गिरह जोड़नी है तो अपना वह गीत इससे बढ़कर है:—

'जिन्दगी है ठेलमठेल, भाँग पी और दण्ड पेल,
घबरा मत मिट्टी के शेर, हँस के मार खाये जा।
अपना दम दिखाये जा'

हँसी का कहकहा मच गया। लता इतनी ज़ोर से खिलखिला उठी कि पेट में बल पड़ने लगे। अवध के ओठों पर बड़ी कठिनाई से हलकी-

सी मुस्कराहट आकर रह गई। लता की खिलखिलाहट की ओर अवध का ध्यान गया और जान पड़ा, मौका पाकर वह खूब ज़ोर से, शक्ति लगाकर हँस देना चाहती है; अपना दुख भुलाने के लिये हँसने का बहाना ढूँढ़ती है।

हँसी का प्रवाह कम होने पर विधुभूषण बोला। उसे संगीत के मर्मज्ञ होने का दावा है। —'शब्दों का भाव जो हो परन्तु स्वर और ध्वनि की एक स्वतंत्र शक्ति और मादकता है। पश्तो भाषा और होनोलूलू देश की भाषा के संग्राम-गीत की ध्वनि आपके मस्तिष्क में एक सा संवेदन पैदा कर देगी, चाहे इन दोनों देशों की भाषाओं के शब्दों के अर्थ और भावना में कोई साम्य नहीं। संगीत स्वर में है, भावार्थ में नहीं........'—हथेली पर घूँसा जमाकर उसने कहा।

सचेत हो अवध ने देखा, लता की वह खिलखिलाहट गायब हो चुकी है। वह अपने हाथों की अँगुलियाँ चटखाती हुई फर्श पर दृष्टि गड़ाये किसी ध्यान में डूब गई है। उसकी चाय के आधे प्याले में एक मक्खी छटपटा रही है। अवध उसकी ओर देख रहा था, अपनी व्यथा में और उसकी चुप में एक साम्य ढूँढ़ते हुये। सिनहा ने बहस की उपेक्षा कर नौकर को और गरम पकौड़े लाने के लिये ताक़ीद कर लता को सम्बोधन किया—'अजी होगा भी....आप सुनाइये, कुछ और सुनाइये!'

विशेष अधिकार के स्वर में कुछ ढुलक कर मिसेज़ सिनहा बोलीं—'लता वही सुनाओ, देखो-देखो जी बदरवा छाये!........आहा, कैसे ज़ोर की घटा उठ रही है!'—पलकें चढ़ा उन्होंने खिड़की से बाहर झाँका और दृष्टि महफ़िल की ओर कर अपनी बात जारी रखी—'यह तेज़ रोशनी अच्छी न लगती हो तो मद्धिम करा दूँ?'—उभी सिलसिले में सिनहा से अनुरोध कर दिया—'बुझा दो न, शेड वाला लैम्प जला दो!'

'बहुत खूब!'—कहकर यासीन और दूसरे लोगों ने धुँधले प्रकाश में मिलने वाले सुख का स्वागत किया। कमरे में प्रकाश धीमा हो जाने

से आकाश में उमड़ते-घुमड़ते मेघों की घटायें भी दिखाई देने लगीं। लता की ओर देख मिसेज़ सिनहा ने दोहराया—'हाँ वही, देखो-देखो जी बदरवा छाये........।'

जैसे बादल में से चाँदनी निखर आये, लता के ध्यान में डूबे चेहरे पर मुस्कराहट फूट आई—'बहुत पसन्द है आपको वह गीत !'

अवध से रहा न गया, बोल उठा—'जब दिल में दुख न हों तो उधार लिया दुख बहुत रसीला जान पड़ता है।'

लता अपनी मुस्कराहट का भाग कृतज्ञता में अवध से बँटाते हुये, माथे पर हाथ रख गीत के छन्द याद करने लगी।

अवध का मन कुछ द्रवित-सा हो गया। मानसिक रूप से वह अपने आपको किसी स्थान पर स्थिर कर पाये कि लता का स्वर मध्यम से उठ पंचम में जा पहुँचा। गीत के भावों और स्वर की लय पर सिर हिलाते हुये खोई सी आँखें छत की ओर उठाये वह गा रही थी—'कित गये हमारे सैयाँ अजहुँ नहिं आये....।'

अवध के अन्तरात्मा की पुकार लता के शब्दों के चुनाव और स्वर से सजीव हो उठी है। अपने मन में विरह की व्यथा उठा देने वाले व्यक्ति को आँखों के सामने अनुभव कर उसके प्रति अपने हृदय की पुकार सुनाने के अभिप्राय से वह भी तन्मयता से सिर हिलाने लगा। विरह वेदना देने वाले व्यक्ति के प्रति जितनी वेदना उसके मन में उठी, उतनी ही कृतज्ञता उसके हृदय की शिकायत अपने सहानुभूतिपूर्ण स्वर में प्रकट करने वाले के प्रति अचेत रूप से जाग रही थी। मन ही मन वह भी शिकवा कर रहा था—'कित गये हमारे सैयाँ अजहुँ नहिं आये.... ।'

महफ़िल को लता के सौजन्य से अनुचित लाभ उठाने का अभ्यास ही हो गया था। एक के बाद एक, कई गाने उसे गाने पड़े। अब लता गा रही थी :—

'ज़िन्दगी गुज़ार रहा हूँ तेरे बग़ैर,
जैसे कोई गुनाह किये जा रहा हूँ मैं।....'

अवध ने मुस्कराने का यत्न कर कहा—'और जब गुनाह जबरन कराया जाय, उसकी सजा और भी नागवार होती है।'

उसकी आँखों में देख, हाथ को आदाब के तर्ज़ में हिलाते हुये लता ने कहा—'जनाब यही तो बात है!'

लता ने यों कह डाला जैसे अवध के शब्दों की प्रतिध्वनि की भाँति यह बात उसके हृदय से स्वाभाविक ही उठ आयी हो। अवध अपने विचार, स्वप्न और कल्पना में डूबा हुआ था। उसके मन में समाकर सुख देने वाले व्यक्ति के अतिरिक्त शेष सब कुछ उसके लिये कमल के पत्ते पर से बह जाने वाली बूँदों के समान था।

× × ×

उस दिन वीरभान के यहाँ अवध को निमंत्रण था। महफ़िलों से विरक्त होने पर भी यह जान कर कि लता भी आ रही है, विरक्ति दूर हो गई। वीरभान ने कहा था—'ज़रा समय से आना। देर से बैठने पर जब तक बात चीत का रंग जम पाये बहुत देर हो जाती है, समझे?'

उस दिन दफ़्तर में अवध की ड्यूटी चौथे पहर की थी। उसे क्रोध आ रहा था, दैनिक पत्र का सहायक सम्पादक होना भी क्या मुसीबत है। चौबीसों घण्टे काम का समय, सहायक सम्पादकों की ड्यूटियाँ ऐसे बदली जाती हैं, समय में उन्हें यों बाँटा जाता है जैसे शतरंज के मोहरे हों। उत्सुकता की इस दुविधा में दोपहर से ही वह लता के मुख से सुनी हुई गज़ल दोहरा रहा था :—

'क़िस्मत में क़ैद थी लिखी फ़स्ले बहार में........!'

अपने एक सहयोगी को उसने पटा लिया; संध्या के चार से रात के दस तक वह अवध की ड्यूटी कर दे और रात के दस से सुबह तक अवध उसकी ड्यूटी निबाह देगा। लता के मर्मस्पर्शी स्वर में अपनी

मर्मान्तक व्यथा सुन पाने के लिये अवध के हृदय में एक चुलबुलाहट थी जैसे वायु के स्पर्श से तालाब की सतह पर हलकी लहरें उठ जायँ। परन्तु केवल सतह पर, हृदय की गहराई स्थिर थी।

उसे विश्वास था, सतह की चुलबुलाहट के नीचे उसके गम्भीर और अडिग प्रेम का स्रोत स्थिर है जो केवल व्यथा की धारा उगलता है। लता की मौजूदगी से उठने वाली लहरें केवल सतह पर हैं। लता बेचारी अच्छी है। अपने भोलेपन या अनजाने में उसके हृदय की पीड़ा की गवाही दे जाती है। ठीक है, उसके अपने हृदय की भी व्यथा है........ वह व्यथा को जानती है और उसका हृदय आहत की पुकार को गुँजा देता है। पर अपने को क्या ? खुश रहे बेचारी ! उसके सहारे अपने हृदय का रोना रो लेते हैं।....गायक वीणा के सहारे अपना अलाप पूरा करता है। वीणा स्वयं अनुभव नहीं करती। ऐसे ही लता भी अवध के हृदय की व्यथा से तटस्थ, नदी किनारे खड़ी, नदी से पृथक वस्तु थी।

वीरभान के यहाँ रंग जम नहीं पा रहा था। गाने के लिये कहने पर लता ने तकल्लुफ़ न कर गाया परन्तु बात न बनी। कुछ बेबसी के स्वर में उसने कहा—'गाते बन नहीं रहा—तबियत कुछ गिरी-गिरी-सी है।'

'तबियत सम्भालने के लिये ही तो गाने की ज़रूरत होती है।'—अवध ने सुझाया।

'बहुत तबियतदार आदमी हैं आप ?'—लता मुस्करा दी और अधमुँदी आँखों से गुनगुनाकर गाना शुरू कर दिया—

'मैं वो शमा मज़ार हूँ, सबकी नज़र में खार हूँ,
शाम हुई जला दिया, सुबह हुई बुझा दिया।'

अवध टोके बिना न रह सका—'मुश्किल तो उस शमा की है, जो शाम को भी जलती है और सुबह भी।'

'अरे भाई दिन में शमा की क्या ज़रूरत ?'—ठुड्ढी उठाकर सिनहा बोला—'यह निरी शायरी है।'

कविता की इस बेक़द्री की उपेक्षा कर अवध ने कहा—'ख़ुद ज़रूरत से इस शमा को जलाता कौन है ? यह तो वो आतिश है, जलाये न जले, बुझाये न बने !'

किसी ने दाद दी—'ख़ूब-ख़ूब !' कुरसी की बाजू पर हाथ मारकर भूषण ने कहा,—'तो और अच्छा, कमबख़्त दिनरात जलेगी तो ख़त्म भी जल्दी हो जायगी, झगड़ा पाक होगा।' कमला, वीरभान की स्त्री, ज़ोर से हँस दी।

'ख़त्म हो जाय तब तो ?'—शिकायत के स्वर में लता ने कहा; परन्तु ऐसे कि उसकी बात कोई समझ नहीं पा रहा। अवध की दृष्टि लता के मुख पर गई जो मुस्कराने का यत्न करने पर भी उदास हुआ चला जा रहा था। आँखें झुका वह साड़ी के छोर से एक धागे को अँगुलियों में ले बटने लगी। अवध की आँखों में सहानुभूति की नमी आ गई। वह लता की ओर देखता रह गया परन्तु दूसरे लोगों की दृष्टि बचाने का ध्यान रखते हुए। व्यथा की गहराई को छिपाये रखने के लिये हृदय की तलैया की सतह पर विनोद की जो हलकी लहरें उठी थीं वे सहानुभूति के ज्वार में ऊँची उठ आईं। हृदय की व्यथा गहराई में ओझल-सी रह गई।

× × ×

लता की प्रशंसा तो सभी करते हैं परन्तु महफ़िल के शोर-गुल में भी अवध की बात कान में पड़ने पर लता का ध्यान उस ओर अवश्य खिंच जाता है। कुछ तो इसलिये कि अवध की बात में एक उलझन रहती है। [illegible] आकर्षण है जो मस्तिष्क को गुदगुदा देता है। इसके अतिरिक्त वह अनुभव करती है कि उसके गाने की क़द्र अवध ही सबसे अधिक कर पाता है। उसके गाने की जिस गहराई में

अवध उतर पाता है दूसरे वहाँ तक नहीं पहुँच पाते। अवध की यह सहृदयता और तन्मयता लता के लिये उसी प्रकार सहायक होती है, जैसे दुखी को आश्वासन। अवध से लता का नाता है, समझ सकने का।

इससे परे अवध की ओर लता का ध्यान नहीं। दिखाई देने वाले और सुनाई पड़ने वाले संसार से पल भर को भी सम्बन्ध टूटते ही वह अपने मन के एकान्त में पहुँच जाती है। उसके हृदय को पूर्ण रूप से दबाये रहने वाली और कभी द्रवित न होने वाली पाषाण प्रतिमा वहाँ मौजूद है जो उसे पल भर के लिये भी निश्चिन्त न होने देती, जो उसके हृदय को कुचल कर भी अपना प्रभुत्व उस पर जमाये। वह प्रतिमा दुख का कारण होने पर भी कुण्डली मारे साँप की तरह हृदय की बाँबी के मुख पर बैठी है। बाँबी के मुख पर आने वाले जीव-जन्तुओं को वह फुफकार देती है। कुचल दिए जाने या ठुकरा दिए जाने पर भी लता का हृदय कुण्डली मारे उस साँप का ही है। वहाँ अवध के लिये जगह कहाँ? उसकी ओर से सहानुभूति का संकेत पा वह केवल दूर से देख, कृतज्ञता से कुछ अनमने ढंग से मुस्करा भर सकती है। जीवन की साध और पाने की इच्छा की जगह उसके हृदय में ले ली थी निराशा और भुला सकने के प्रयत्न ने। अवध और लता सौहार्द के निस्संकोच से एक दूसरे की ओर देख कर बात कर सकते हैं क्योंकि वे एक दूसरे की सीमाओं को समझते हैं। परस्पर कुछ देने पाने की निराशा के कारण असंतोष और शिकवे की गुंजायश वहाँ नहीं।

× × ×

कई दिन बाद संध्या समय अचानक सिनहा के यहाँ जाने पर अवध ने देखा, लता आयी थी और जाने के लिये तैयार है।

'ओहो! आपको खयाल था शायद मैं आजाऊँ?'—जाने के लिये तैयार लता की ओर देख, विस्मय प्रकट कर अवध ने पछा।

'नहीं तो !........कैसे कहते हैं आप ?'—उतने ही विस्मय से लता ने प्रश्न किया।

'मुझे देखते ही जाने के लिये जो आप तैयार हैं ?'........अपराधी के से स्वर में अवध ने उत्तर दिया।

'लीजिये बैठी हूँ।'—बैठकर लता ने उत्तर दिया—'परन्तु देखिये, देर कितनी हो जायगी ? और फिर अकेले........दूर भी कितना है ?'—बेबसी से गर्दन एक ओर झुकाते हुए उसने कहा जो अभ्यास से स्वभाव बन चुका था।

लता के स्वर की लाचारी अनुभव करने पर भी अपनी बात रखने के लिये अवध ने उत्तर दिया—'देर तो समझने से होती है। समय का तो काम ही है बीतते जाना। रही बात अकेले की ! सो डर क्या है ? सड़कों पर न भेड़ियों के झुण्ड फिरते हैं और न डाकुओं के। बशर्ते डर मुझ से न हो, जहाँ कहिये वहाँ छोड़ आऊँ ! और यह देखिये—' ऊपर की ओर संकेत कर उसने कहा—'आकाश को भी आपका इतनी जल्दी जाना मंजूर नहीं।'—रह-रहकर बरसने वाला भादों का बादल फिर एक बेर ज़ोर से बरस पड़ा। विवशता के भाव से लता ने गर्दन कुरसी की पीठ पर टिका दी।

पानी भरी हवा के झोंके से आँखों में ठंडक अनुभव करते हुये मिसेज़ सिनहा ने अनुरोध किया—'लता, अब इस मौसम का ख़्याल कर मन से कोई चीज़ सुना दो !'

कातर आँखों से सबकी ओर देखते हुए लता ने क्षमा-सी माँगी—'जाने क्यों ऐसे मौसम में तबियत कुछ ऐसी गिर जाती है........दिन भर पड़ी रही। बहुत जी करके शाम को ज़रा बाशी ( सिनहा के बालक ) से दिल बहलाने चली आयी। जाने कब से उठूँ-उठूँ कर रही हूँ, मगर उठ नहीं पाती। ऐसा जान पड़ता है गिर जाऊँगी !'

'ऐसा जान पड़ता है जैसे अपना-आप अपने हाथ में न हो !'—समर्थन के स्वर में अवध ने पूछा।

'हाँ।'—लता ने सिर हिलाकर हामी भरी।

'जैसे कठपुतली की डोरी टूट गई हो !'—अवध ने और सहयोग दिया।

'आप तो मज़ाक करते हैं !'—मुस्कराकर लता बाहर की ओर देखने लगी।

'यह मज़ाक है ?'—आँखें फैला अवध ने प्रश्न किया परन्तु लता अभी बाहर ही देख रही थी।

इस सब की ओर ध्यान न दे मिसेज़ सिनहा गोद में सोये बालक की पीठ पर हाथ फेरते हुए बोलीं—'हाय, कितना अच्छा तो मौसम है !'

अपने व्यावहारिक ज्ञान का परिचय देने की इच्छा का दमन सिनहा न कर सका—'नहीं, यह बात ठीक है'—उसने कहा—'काम-शास्त्र में लिखा है; वर्षा ऋतु के उमड़ते-घुमड़ते मेघ स्त्रियों में काम-रस उत्पन्न कर देते हैं।'

'क्या बातें किया करते हो तुम ?'—माथे पर बल डाल मिसेज़ सिनहा ने धमकाया। लता जैसे यह सब सुन नहीं सकी और बाहर ही देखती रही।

सबको चुप देख मिसेज़ सिनहा ने अपना अनुरोध दोहराया—'कुछ सुनाओ न लता !'

एक लम्बी साँस भर फर्श की ओर देख, लता ने गुनगुना कर गाना शुरू कर दिया। वही गाना, वही पुराना राग, पुरानी सदा—'तूने फलक ये क्या किया, बुलबुल से गुल छुड़ा दिया।'....सिनहा के अनुरोध से भी उसे कुछ सुनाना पड़ा।

सिर हिलाकर सिनहा प्रशंसा करता रहा—'वाह, वाह, खूब !' अवध चुप रहा। वह ग़ज़ल के बयान में नहीं, कहीं और खो गया था।

सचेत हो उसने कहा—'पर बुलबुलें तो चहकेंगी ही, वे पैदा ही चहकने के लिये हुई हैं। जैसे आदमी जीने के लिये पैदा हुआ है, मरने के लिये नहीं।'

उपेक्षा से लता बोली—'जिन्दगी है क्या ?........जीते रहने में ही क्या है ?'—पानी ज़ोर से बरस रहा था। सब उसी के शब्द को सुन रहे थे। यह शान्ति मिसेज़ सिनहा को कुछ खटकने सी लगी। सोये हुये बच्चे की पीठ पर हाथ रख उन्होंने जिक्र शुरू किया—'बड़ी मुश्किल से सोया है। नींद ही नहीं आती थी।'—वे कहती चली गईं—'दिन में सो जाने के कारण जब रात में नींद नहीं आती, बच्चे बहुत तंग करते हैं।'

पानी थमते ही लता उठ गई—'अब चलूँ! अम्मा जाने कितनी नारज़ होंगी। और क्या आश्चर्य, उन्होंने कुओं-तालाबों में जाल डल-वाने आरम्भ भी कर दिये हों।'—सिनहा ने सिर खुजाते हुए कुछ परेशानी के ढंग से कहा—'टाँगा........!' जिसका अर्थ था, इस पानी में, इतनी रात गये, टाँगा कहाँ ढूँढ़ा जाये ?

सिनहा की उस चिन्ता को लता ने दूर कर दिया। उसने कहा—'टाँगा राह में मिल जायगा........देखा जायगा !'

ज़ीने से नीचे तक छोड़ने सिनहा भी उतरा परन्तु आगे उस भीगी रात में अवध और लता के लिये अकेले चले जाने के सिवा चारा न था। हाल में बरसे नये पानी की तलैयों को बचाते वे सड़क पर चले जा रहे थे। फरफराती हवा में सिर ऊँचा कर अवध बोला—'हवा तो खूब अच्छी है !'

'हूँ'—लता ने हामी भरी। वह सोच रही थी अस्पष्ट से रूप में अवध की उस बात को—'आदमी जीने के लिये पैदा हुआ है, मर जाने के लिये नहीं !........पर कैसे ?' फिर ख्याल आया, अवध की बात का उत्तर उसने ठीक से नहीं दिया। अवध को उत्साहित करने के लिये उसने कहा—'हवा खूब है........पर क्या है ?'

—'क्यों ?'

—'सब अपनी जान से है........जब दिल ही बुझ जाय !'

—'दिल बुझ कहाँ जाता है। बुझ ही जाय तो फिर शिकायत कैसी ? दिल चोट खा जाता है। कुचला जाता है परन्तु प्राण रहते वह फिर उठता है क्योंकि जीवन गति है....'

लता सुनती जा रही थी उपेक्षा से गर्दन एक ओर फेंके जैसे अपने विरुद्ध फैसला सुन रही हो। वह चुप थी परन्तु तर्क ने कहा—अपने को इससे क्या........लेकिन ठीक भी हो सकता है।

अवध भी कहता गया—'जीवन की उष्णता को समेट न पाने के कारण और राह खोजने के लिये दिल जल उठता है। जब अभी हृदय-दीपक में स्नेह का तेल उफ़न रहा है, वह जले क्यों न ?....और जब दीपक की लौ स्वाभाविक गति से न जल पाये तो धुआँ उठेगा नहीं तो क्या ? यह तो केवल एक ज़िद् है ! प्रेम तो जीवन को पाने की प्रवृत्ति है। प्रेम में जीवन की उपेक्षा करने लगें तो विषमता आयेगी ही !....' सहसा ध्यान आया, इस बात का अर्थ क्या हो सकता है ? बे मौका चल पड़ने वाले प्रसंग को सार्थक बना देने के लिये वह कहता गया—'राह खोजते हृदय को जीवन की प्रेरणा से एक जगह प्रकाश दिखाई दिया। वह उस प्रकाश की ओर आकृष्ट हुआ।....प्रकाश की वह झलक उसके सामने से हट गई। असफल और निराश हो जाने पर वह नया प्रकाश क्यों न खोजे ? जब जीवन में स्वाभाविक गति से उष्णता उत्पन्न होती है तो प्रकाश की चिनगारियाँ क्यों न दीखें........जीवन में समझ पाना ही तो प्रकाश है........'

अवध जो कुछ कह रहा था, स्वयं उसके व्यवहार के विरुद्ध था। कठिन परिस्थिति पैदा कर अवध उसे निभाये जा रहा था जैसे अपने अपराध को स्वीकार कर रहा हो। स्वर में सुनाने का भाव और आग्रह नहीं प्रायश्चित्त की कामना थी।

सड़क पर वह गली आई जिसमें अवध का मकान था। दोनों में से किसी ने उस ओर ध्यान न दिया। फरफराती हवा में, सड़क पर जमा पानी से बचते हुए वे चले जा रहे थे। लता के मकान की ड्योढ़ी आ गई और आगे जाने की राह न थी।

भीतर जाने से पहले लता चुप खड़ी रही। यत्नकर उसने कहा—'आपको इतनी दूर आने का कष्ट हुआ।'—स्वर का कम्पन प्रकट कर रहा था, मन का भाव शब्दों के अर्थ में नहीं है।

झीने काले बादलों में उतावली से भागते चाँद ने झाँका, अवध को लता की बड़ी-बड़ी आँखों में झाँकते हुए और सुना अवध को अस्थिर स्वर में कहते हुए—'कष्ट क्या; मैं तो अभी और चल सकता हूँ; बिना रुके चल सकता हूँ....कभी न समाप्त होने वाली राह पर....।'

इस उत्तर से जैसे लता के पैर लड़खड़ा गये। वह कुछ कह तो सकी नहीं। दोनों हाथ उठा विदाई की नमस्ते कर भीतर चली गई। मन न माना, ड्योढ़ी में से जब उसने घूमकर देखा तो अवध की पीठ ही दिखाई दी। वह चला जा रहा था.......छाया और चाँदनी में गर्दन एक ओर लटकाये।

लौटते समय सड़क पर भरे पानी से बचने का ख़याल भी अवध को न रहा। अधिक से अधिक शीतलता अपने हृदय में भर पाने के लिये सजल वायु में नाक उठाये, पानी में चप्पल छप-छपाता, धोती को छींटों से भरता, वह चला जा रहा था। लता के हृदय में भरा दुख का धुआँ दूर करने के लिये खिड़की उघाड़ युक्ति और तर्क की जिस वायु का मार्ग उसने खोला था, उस वायु ने स्वयम् उसके हृदय में तूफ़ान खड़ा कर दिया, वह स्वयम् उसमें उड़ गया।

तर्क के उस तूफ़ान में उसकी मेज़ पर रखी, काँच के दो टुकड़ों के भीतर स्थिर, शोभना की तस्वीर—उस शोभना की तस्वीर जिसे पूर्ण

विश्वास से अवध ने अपना हृदय सौंप दिया था। जिस शोभना ने अवध से बिछुड़ने पर प्राण त्याग देने की प्रतिज्ञा की थी और जो शोभना एक दिन एक क्षण के लिये एक बार मिलने की प्रार्थना को भी ठुकरा, सब प्रतिज्ञाओं को भूल, पिता के परामर्श से एक आई० सी० एस० की बाँह का सहारा ले, समाचार-पत्र में अपना चित्र छपवा, मधु-यामिनी (Honey Moon) मनाने चली गई थी।........उस शोभना की तस्वीर जिसकी बेवफ़ाई के शव पर अपनी वफ़ादारी और जीवन की साध की समाधि बना आहें भरते-भरते मर जाने का निश्चय अवध ने किया था। घर पहुँच बिस्तर पर गिर पड़ने से पहले शोभना की वह तस्वीर अवध ने युक्तिवाद की विमूढ़ता में कुछ उन्मत्त से हो, फ्रेम से निकाल खिड़की की राह फरफराती वायु में छोड़ दी।

× × ×

अनेक मित्रों के यहाँ अनेक निमंत्रण पा चुकने के बाद अवध ने भी व्यावहारिकता के नाते एक दफ़े अपने यहाँ लोगों को आमंत्रित किया। तब वह लता को बुला लाया था। लता अवध के घर की राह जानती थी।

रात भर ठीक से नींद न आ सकने के कारण सुबह ठीक समय से न उठ, माँ के उलाहने सुनते-सुनते, किसी तरह लता ने एक बजे तक का समय बिताया। उस समय न जाने किस प्रेरणा से उसके क़दम घर से निकल, चलते-चलते अवध के मकान के ज़ीने पर आ पहुँचे। उस परिस्थिति में अपने आपको पा वह लज्जा से मरी जा रही थी। अब यों ही लौट पड़ना भी उपहास और लज्जा का कारण हो जाता। अपने आपको सँभालने के लिये साड़ी का आँचल सिर पर साधते हुए किवाड़ लाँघना ही पड़ा। वह पहुँची ठीक उस समय जब अवध शेरवानी के बटन लगा, ड्यूटी पर जाने के लिये मेज़ से काग़ज़ समेट रहा था। ऐसा विक्षिप्त कि लता के क़दमों की आहट तक उसे सुनाई न दी। साहस

बटोर लता ने पुकारा—'नमस्ते........!' चकित, उनींदी, लाल आँखें उठा कर अवध ने उस ओर देखा।

क्या बात कह कर लता यों सहसा चले आने के संकोच को ढँके? अचानक उसकी दृष्टि पड़ गई उस फ्रेम पर जहाँ पहली दफ़े आ एक आधुनिक नवयुवती का बाँका फ़ोटो उसने देखा था और कौतूहल से उसे देर तक देखती रही थी। उसे देख उसने कुछ कल्पना भी कर ली थी। आज वह फ्रेम खाली........!

मेज़ तक बढ़, खाली फ्रेम पर हाथ रख, अवध की आँखों में देख उसने पूछा—'तस्वीर क्या हुई?'

पथराई आँखों से लता की ओर देख अवध ने उत्तर दिया—'चली गई....जीवन में आ सकने वाली प्रकाश की किरण को जो पर्दा रोके है, उस पर जीवन निछावर कर देने से लाभ?....जीवन का द्वार खुला रहना बेहतर है। शायद प्रकाश की किरण मिल सके।'—सिर झुका कर वह चुप रह गया।

लता के पैर काँप गये। जीना चढ़ते समय वह अपने को धिक्कार रही थी—वह कैसे और क्यों वहाँ आ मरी? अब चकराते हुए मस्तिष्क में सूझ पड़ने लगा—आये बिना रहती कैसे? हृदय भय से काँप रहा था। पहले कभी अवध के सामने ऐसा नहीं हुआ। परन्तु हृदय के सूनेपन की अपेक्षा कँपकँपी की इस पीड़ा में कितनी सान्त्वना थी........!

४

## मेरी जीत

कटहल इन्हें बहुत पसन्द है। इसलिये कटहल की तरकारी, बेसन देकर सदा अपने ही हाथों बनाती हूँ। रसोई घर में थी। दरवाज़े की घण्टी बज उठी। आड़ से झाँककर देखा, एक मामूली-सा बूढ़ा आदमी था। उसी हालत में आकर पूछा—'क्या चाहिए?'

उसने एक पुर्जा दिखाया। पुर्जे पर अंग्रेज़ी में इनका नाम लिखा था। जवाब दिया—'हाँ, साहब दफ़्तर गये हैं। क्या चाहिए?'

बग़ल में थामे हुए एक पिल्ले को आगे बढ़ा बूढ़े ने समझाया—साहनी साहब ने आपके यहाँ यह पिल्ला दिखाने के लिये भेजा है।' तब याद आया, कुत्तों का ज़िक्र चलने पर साहनी से कहा था—'अच्छी जात का कोई कुत्ता मिले तो बताइयेगा।'

पिल्ला था खूबसूरत। गदबदा-गदबदा। सफ़ेद ऊन के बण्डल जैसा। चमकीले बटन जैसी आँखें; प्यारा-प्यारा। पूछा—'क्या लोगे?' उत्तर मिला—'पाँच रुपये!'

मुँहमाँगी तो मौत भी नहीं मिलती, कीमत का तो कहना क्या! कहा—'पाँच रुपये तो बहुत ज़्यादा हैं। बीसियों पिल्ले सड़क पर रुलते फिरा करते हैं।'

बूढ़े ने पिल्ले को एक कान से पकड़कर लटका दिया और फिर पूँछ से। पिल्ला आँख झपक कर रह गया, चिल्लाया नहीं। बूढ़े ने कहा—'देखिये, मामूली कुत्ता नहीं; विलायती नसल का असली टेरियर है। पैरों में गिन लीजिये, पूरे बीस नाखून हैं। किसी इंग्रेज़ से खरीदियेगा तो बीस क्या, पचास से कम नहीं लेगा!'—आख़िर चार रुपये में फैसला हो गया।

पिल्ले के लिए एक चटाई बिछा उस पर फटे कम्बल का टुकड़ा बिछाया। एक कटोरी में दूध उसके आगे रक्खा। पिल्ला अभी तक माँ के दूध पर ही रहा होगा। ज़बान से लप-लपकर दूध पीना उसे आता न था। कटोरी के दूध में कई दफ़े मुँह छुआ देने पर वह केवल होंठ और नाक चाटकर रह गया।

सूरज डूबे 'ये' आये और मुझे पिल्ले में उलझा देख त्योरियाँ चढ़ा पूछा—'यह क्या?'

'पिल्ला है।'—उत्तर दिया।

बोले—'सो तो है ही! हमने कब कहा हाथी है। पर यह गन्द हमें पसन्द नहीं।' मालूम हुआ कुत्ते-बिल्लियों से इन्हें नफ़रत है।....होगा! अपने दिल में कहा—धीरे-धीरे सब ठीक हो जायगा!

पिल्ले की कूँ-कूँ सुनकर इन्होंने फिर कहा—'हटाओजी, यह क्या मुसीबत पाल ली तुमने?'

मुस्कराकर समझाया—'ऐसे घबराते क्यों हो? यों तो आदमी का बच्चा भी चिल्लाता है। बड़ा हो जायगा तो घर की रखवाली करेगा, अच्छा लगने लगेगा। कुत्ता कितना वफ़ादार जानवर होता है!'

माँ की याद से और पेट की भूख से पिल्ला रात भर चिल्लाता रहा। शायद उसे जाड़ा भी लग रहा था। उसके चिल्लाने से ये झल्ला उठते। इसलिए रात में थोड़ी-थोड़ी देर बाद उठ उसे पुचकार कर चुप कराने की कोशिश करती रही।

सुबह उठते ही इन्होंने कहा—'फेंको इस गन्द को !' डर और रहम के आँसू आँखों में भरकर मैंने कहा—'फेंकूँ कहाँ ? इसकी माँ का भी तो पता मालूम नहीं जो वहीं पहुँचा दिया जाय ! मर जायगा बेचारा कहीं !'

उनका गुस्सा और बढ़ गया—'मर जायगा तो हम क्या करें ? हमसे पूछकर लिया था क्या ? यह पिल्ला इस घर में रहेगा तो हम नहीं रहेंगे !'—इतने नाराज़ हुए कि दफ़्तर जाने के समय तक बोले ही नहीं।

रात भर में ही उस बे-माँ बाप के पिल्ले पर मुझे इतना स्नेह उमड़ आया। घर से उसे निकालने की बात सोचते कलेजा फटता था। दिल ही दिल में रो रही थी, हाय उसे मैंने क्यों ले लिया। इनसे पूछे बिना पिल्ले को लेने की भूल मैंने क्यों की ; घर इनका है, मेरा नहीं !

दफ़्तर जाते समय उस पिल्ले की ओर तिर्छी निगाह से देखकर इन्होंने कहा—'खाना खाने हम नहीं आयेंगे। हमारा इंतजार मत करना !'—मेरा दिल और भी बैठ गया। डरते-डरते मैंने कहा—'पिल्ले को तो मैं अभी मेहतर के हाथ भिजवाये देती हूँ....खाना खाने आइयेगा न ?' इन्होंने सिर हिला दिया—'अच्छा !' और चले गये !

इनके चले जाने के बाद मैं खूब रोई और फिर माली को बुलाकर समझाया—'तुम्हारे बच्चों के लिये खिलौना हो जायगा। लो, इस पिल्ले को ले जाओ। इसके लिये दूध दोनों समय हम दे दिया करेंगे। इनाम भी देंगे लेकिन साहब के सामने पिल्ला न आये !' इस ढंग से पिल्ले का प्रबन्ध हो गया।

इनके दफ़्तर चले जाने पर मैं पिल्ले को ले आती। पहले रुई की बत्ती बनाकर उसे दूध पिलाया फिर दूध में रोटी मीस कर खिलाना शुरू किया। महीने भर में वह कूदने-फाँदने लगा। इनके लौटने से पहले ही मैं पिल्ले को माली के यहाँ सहेज आती। मन में यह दुख था

कि देखो हमारा पिल्ला है और दूसरे का होकर रहता है। जहाँ तक होता उसे अपने से हिलाने की कोशिश करती। वह मेरी आवाज़ पहचानता था। बुलाने से दौड़ा आता परन्तु माली के सामने रहने पर उसी की ओर लपकता।

एक दिन मैं दोपहर में पिल्ले से खेल रही थी। दूध रोटी खिलाकर कटोरी पास ही रखी थी। उस रोज था शनिवार, पर मुझे याद ही न रहा। बरामदे में उनके जूतों की खट-खट सुनाई दी। मैं घबरा गई, अब हो क्या सकता था। वे भीतर आ गये तब भी पिल्ला मेरी गोद में ही था। झपटकर उठ खड़ी हुई।

पिल्ले की ओर देख इन्होंने पूछा—'यह क्या ?..........और मँगा लिया ?........हमने मना कर दिया था !'

प्राण सूख गये। मुँह से निकल गया—'और कहाँ....? वही तो है !'

'विस्मय से इन्होंने पूछा—'क्या ?'

—'हाँ,....माली के यहाँ रखा दिया था।'

वे पिल्ले की ओर आश्चर्य से देखते रहे। पिल्ला उनके हृदय की घृणा और क्रोध को न समझ उनकी पतलून के पौंचे और जूते के फीते को खींच-खींच, उलटा-सीधा कूद उन्हें खुश करने की कोशिश कर रहा था। डर के मारे पिल्ले को ऊपर उठाया और माली के बच्चे को पुकार उसे थमा दिया।

'थके होगे, ज़रा लेट न जाओ ?'—इनसे कहा और खुद दूसरे कमरे में उनके लिये बदलने के कपड़े लेने के लिये चली गई।

भय लग रहा था, बहुत बिगड़ेंगे। ऐसी ग़लती हो गई।........क्या करूँ ? मन की घबराहट के कारण कुरता कमीजों में और धोती चद्दरों में ढूँढती रही। आख़िर कपड़े ले, सहमते क़दमों से लौटी तो देखती हूँ कपड़े बदले बिना ही तख़्त पर लेट गये हैं। पिल्ला उनके पेट पर उलटा लेटा अपने पंजों और दाँतों में उनकी नेकटाई लिये खेल रहा

है। 'ये' भीगी आँखों से उसकी ओर देख रहे हैं। पिल्ले की यह गुस्ताख़ी देख मैंने उसे नीचे उतर आने के लिये डाँटा —'हुश-हुश !'

अपनी तर आँखें मेरी ओर उठा इन्होंने कहा—'मुझे मालूम न था कि तुम इस पिल्ले को इतना चाहती हो और उसके बिना रह न सकोगी। मेरी वजह से तुमने इतने दिन अपने कलेजे पर पत्थर रखा। क्या हर्ज़ है ; पिल्ला यहीं रहेगा !' और पिल्ले को गोद में ले उस पर स्नेह से हाथ फेरते रहे।

मेरा दिल जाने कैसा होने लगा ? झपटती हुई गुसलखाने में चली गई। बड़े ज़ोर का रोना आ गया। दिल भर कर रोई कि उनसे जीत गई। पर जीत कैसे गई ?........अपनी हार स्वीकार करके !

स्त्री यदि जीतना चाहती है तो उसका उपाय है, हारते चले जाना। उसकी अपनी इच्छा कोई न हो....उसकी अपनी राय कोई न हो तो वह सुखी रह सकती है। परन्तु यह सुख और जीत कैसी ?....ऐसी कि जीतने की इच्छा कभी न करे........अपने को कुछ न समझे !

## जन सेवक

कांग्रेस के राज में दूर दिहात के रहने वाले ग़रीब बेज़बान किसानों को क्या-क्या न्यामतें मिलीं, उनके साथ क्या भलाई हुई, इन सब बातों से शहर की रहने वाली मध्यम श्रेणी की शिक्षित जनता को बहुत कम वास्ता रहा। तकफ़ीफ़लगान ( लगान में कमी ), इल्तवाए अदायगी कर्ज़ ( कर्ज की अदायगी का स्थगित करना ), मौरूसी हक़ूक और आबियाना, यह सब लफ़्ज शहर में रहने वाली मध्यम श्रेणी की राजनैतिक रूप से जाग्रत जनता की दृष्टि में 'पश्तो' हैं। उनके लिये कांग्रेस राज की बरकत थी कि धोती कुरता पहने, चप्पल चटकारते असेम्बली हाल में धँसे चले जाते। जब चाहते कलक्टर और बड़े-बड़े साहिब अफ़सरों की राह रोक कर बात कर लेते। वर्दियों में सजे साहिबों के अर्दली देखते रह जाते। 'चूँ' करने की हिम्मत उन्हें न होती। जान पड़ता था, नौकरशाही की हदबन्दियाँ टूट गईं। बड़े-बड़े अफ़सर अपने आपको जन सेवक (Public Servant) बताने लगे। एक चिट भेजकर जो चाहता उनके सिर पर जा धमकता। कांग्रेस मंत्री तो मानों जन्माष्टमी के मन्दिर का सिंगार थे, महज़ देख आने के लिये ही लोग उनके यहाँ हो आते।

उस ज़माने में यह सब करने का अवसर 'उन्हें' भी मिला था।

एक राजनैतिक आँधी आई और एक ही रात में, एक वैधानिक झकोरे से कांग्रेस के राज की जगह नौकरशाही का राज क़ायम हो गया। लेकिन हुज़ूर लाट साहब की जिस कलम ने कांग्रेस सरकार को बरखास्त कर दिया जनता के दिमाग़ को, जिसे कांग्रेस ने 'हक़' और 'अधिकार' के पाठ पढ़ा दिये थे, उतनी जल्दी न बदल सकी।

'उन्हें' एक शिकायत थी। शिकायत की वजह उनके खयाल में थी, सरकार की तरफ़ से एक ग़लत फ़हमी। शिकायत दूर करने का इरादा किया। क्या वजह कि ग़लत फहमी दूर कर देने से शिकायत दूर न हो?—क्यों न सरकार का एतबार किया जाय? हमेशा ही सरकार से बदगुमान क्यों बने रहें? प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है, मामलात के सुलझाने में, ग़लत फ़हमियों को दूर करने में सरकार की मदद करे। जो लोग ऐसा नहीं करते, अपने कर्तव्य से गिरते हैं।

सरकारी नौकर आख़िर जनता के नौकर हैं, जनता की सेवा के लिये हैं। पंतजी ने कितने ही अवसरों पर जनता को इस बात का निश्चय दिलाया था कि सम्पूर्ण सरकार जनता की सेवा के लिये ही है। जनता के सेवकों से यह आशा क्यों न की जाये कि वे उसकी बात सज्जनता और सहानुभूति से सुन उस पर ग़ौर करेंगे?

× × ×

साहब का अर्दली नौकरशाही का चोबदार है। वह साहब तक पहुँचने की राह में पहला दरवाज़ा है। इसके साथ ही नौकरशाही के दरबार में मान, सलाम और सम्मान की भेंट भी वही बाँटता है। वह सब अफ़सरों के ओहदे और दर्जों को पहचानता है। वह जानता है, कहाँ सलाम सिर्फ हाथ माथे की तरफ़ बढ़ा देने से दिया जायगा और कहाँ कमर तक झुकना चाहिए। सलाम के मामले में कंजूसी वह नहीं करता। वह जानता है, एक सलाम की कोताही का नतीजा

किसी वक्त बहुत दूर तक भी जा सकता है। उसका काम है, सलाम देना और सलाम बोलना।

उस रोज़ 'वे' कलक्टर साहब के बंगले पर पहुँचे। अर्दली का सलाम वाजिब हक के तौर पर मंजूर कर लिया। अपने नाम का कार्ड निकाल अर्दली के खुश्क और गठीले हाथ में थमा, दोनों हाथ पतलून की जेबों में धंसा बदन को पंजों पर तौला, मानों अपने मज़े में हैं, कोई हिचकिचाहट नहीं।

अर्दली बरामदे में लटकी कितनी ही चिकों में से एक के पीछे चला गया और कार्ड लिये हुए लौटा। माशा भर कम विनय से उसने जवाब दिया—'साहब बहुत ज़रूरी कागज़ देख रहे हैं, तशरीफ़ रखिये।' और बग़ल के बरामदे में पड़ी एक कुर्सी की तरफ़ इशारा कर दिया। कुछ और लोग भी वहाँ मौजूद थे। उन जैसे ही लेकिन कहीं अधिक विनम्र, अर्दली की खुश्क नज़रों के सामने सलामें बिछाते हुए।

दस, बीस, तीस मिनिट गुज़र गये। आख़िर एक भला आदमी कितनी देर इन्तज़ार कर सकता है? वे कुर्सी पर करवटें बदलने लगे। कई दफ़े अर्दली इधर से उधर, उधर से इधर गुज़रा। ख़याल आता, शायद अब उनकी ही बारी हो

अर्दली कई दफ़े आया। उनकी परेशानी का ख़याल किये बिना चला गया। वह दूसरे उम्मीदवारों की मुस्कराहटों की ओर अलबत्ता तिर्छी नज़रों से देखता जाता था।

अनुभव होने लगा, यों इन्तज़ार में बैठे रहना हेठी है। इन्तज़ार की एक हद होती है। जनता के प्रति जनता के सेवक कहलाने वालों की यह उपेक्षा उनके दिल में सूल की तरह खटकने लगी। उस बेबसी की हालत में अपने आत्मसम्मान की रक्षा कैसे की जाती? अपमान की टीस अनुभव न करने के लिये एक सिगरेट जला लिया मानों कोई ज़लालत नहीं। इस इन्तज़ार को वे दोस्ती के तौर, कलक्टर साहब पर पड़े काम

के बोझ का ख़याल कर, मज़े में गुज़ार रहे हैं। और फिर कलक्टर के बंगले में बैठकर सिगरेट पीने का ख़याल भी बुरा नहीं। इन्तज़ार की बेइज़्ज़ती का यह अल्हड़ सा बदला था।

पन्द्रह मिनिट और गुज़र गये। अब इन्तज़ार का बोझ आत्म सम्मान के लिये असह्य हो गया। बग़ल से गुज़रते अर्दली की तरफ़ देखकर पूछा—'साहिब बहुत मशग़ूल हैं?'

लान में खेलते हुए कुत्ते को पुकार कर अर्दली ने जवाब दिया—'साहिब कमीश्नर साहब के यहाँ चले गये।'

मानों दाँतों तले कंकरी पिस गई। अपने आपको सम्भाल कर सोचा—'कोई विकट समस्या आ पड़ी होगी। जनता के सेवकों की जिम्मेवारियाँ बहुत होती हैं।'

× × ×

दूसरे दिन मुलाक़ात के लिये जाने पर एक फीका सा सलाम मिला। साहब के बारे में पूछने पर जवाब मिला, गुसलखाने में हैं। इस पर भी जब इन्तज़ार करने के लिये 'वे' स्वयं कुर्सी पर बैठ ही गये, अर्दली ने तीन भाषाओं में हाथ से लिखा एक नोटिस उनके सामने ला पेश किया। लिखा था—'सनीचर के रोज़ कलक्टर साहब सिर्फ़ सरकारी अफ़सरान से मुलाक़ात करते हैं।'

बेबसी में होंठ काट पूछा—'तो फिर साहब के लिये फ़ुर्सत का दिन कौन हो सकता है?'

—'कोई भी दिन'

एतवार की छुट्टी के बाद काम ज़्यादा होगा। इस ख़याल से सोमवार छोड़ मंगलवार के दिन फिर साहब के बंगले पर हाज़िर हुये। फिर वही विज़िटिंग कार्ड, वही अर्दली का अलसाते हुए गर्भिणी की चाल से चिक के भीतर जाना और उससे भी धीमी चाल से लौट जमुहाई ले बरामदे में कुर्सी पर बैठ जाने के लिये इशारा कर देना।

लेकिन निश्चय था आज मामला समाप्त हो ही जायगा। साहब को भी शरम होगी कि दो दफ़े आ चुके हैं। बँगले की ताज़ी हवा में दिमाग़ को सचेत कर समय का सदुपयोग करने के लिये उन्होंने अपने मामले को दोहराना शुरू किया। सोचा, कौन बात पहले और कौन पीछे कहना ठीक होगा। किस प्रकार चुने हुये संक्षिप्त शब्दों में वह अपनी बात समझा देंगे। सोचते-सोचते शरीर में एक भारीपन अनुभव होने लगा। शायद ताज़ी हवा से नींद की खुमारी दिमाग़ में भरने लगी। बदन को हिला सचेत कर घड़ी की ओर देखा, काफ़ी समय बीत गया था।

अर्दली के पैरों की आहट सुन ख़याल हुआ शायद अब बुलाने आ रहा है। अर्दली चुपचाप आगे चला गया। घड़ी की ओर देखते-देखते पन्द्रह मिनट और गुज़र गये। प्रत्येक क्षण अपमान की नई चोट की तरह अनुभव होने लगा। तेज़ी से चलती घड़ी की सुई उनके अपमान की मात्रा बढ़ा रही थी। सुनते हैं प्रतीक्षा की घड़ियाँ लम्बी जान पड़ती हैं परन्तु वे मना रहे थे, घड़ी आहिस्ता चले ताके प्रतीक्षा के कारण होने वाले अपमान का बोझ कम रहे।

डेढ़ घण्टे से अधिक समय बीत गया—शायद साहब को खयाल नहीं रहा कि कोई आदमी मिलने की प्रतीक्षा में है? अर्दली से पूछने के लिये पुकारना चाहा परन्तु शब्द होठों पर ही समाप्त हो गए। आख़िर साहस कर पूछा—

—'क्या साहब को फ़ुर्सत है?'

—'मुलाक़ात का वक़्त बारह बजे तक है?'

जैसे बरछी कलेजे के पार हो गई। अर्दली से अपने अपमान और अवहेलना की शिकायत करने का अर्थ था—अपने आप को दुगना अपमानित करना। अर्दली का क़ुसूर क्या? उसका तो काम ही है सलाम और उपेक्षा की भेंट लोगों तक पहुँचाना। नौकरशाही के

जन सेवक ( Public Servant ) भगवान के मन्दिर का पण्डा है। नौकरशाही के भगवान अपने दुर्लंध्य प्रासाद में बैठकर इन्हीं चरों और गणों द्वारा जनता के भाग्य का निर्णय करते हैं। जनता के इन सेवकों पर जनता का अधिकार क्या ; ज़ोर क्या ? जनता का अधिकार है, इन देवताओं की आज्ञा का पालन।

इस अपमान और तिरस्कार को चुपचाप निगल जाने के प्रयत्न में उनका दम रुकने लगा और आँखों में आँसू आगये। जल्दी-जल्दी कदम बढ़ा बँगले के बाहर इन्तजार करते टांगे में जा बैठे। आँसू भरी धुन्धली आँखों से कुछ भी दिखाई न देता था। अनुभव हो रहा था, मानो वह अपमान और तिरस्कार के दलदल में गले तक फँस निराशा से हाथ पैर मारना छोड़ निढाल हो गये।

टांगा असेम्बली भवन के समीप से जा रहा था। असेम्बली भवन के गुम्बद ने याद दिला दी उन दिनों की जब वे अभिमान से असेम्बली भवन के भीतर चले जाते थे। तब भरोसा था—यहाँ हमारी जनता के प्रतिनिधि हमारी जनता के लिये क़ानून बनाते हैं। दूसरी ओर दिखाई दिया, जनता के सेवक (Public Servant) का अवहेलना पूर्ण और तिरस्कार भरा व्यवहार, जिस के सामने,........।

× × ×

और मुहल्ले वालों की बुरी आदत है कि बड़े अफ़सर के यहाँ होकर कोई आये तो घेरकर पूछेंगे—क्या हुआ कैसे हुआ ?

ऐसे समय अपनी प्रतिष्ठा के लिये उत्तर यही है कि साहब बहुत देर तक सब सुनते और पूछते रहे। अफ़सोस किया कि पहले हाल मालूम न हुआ और विश्वास दिलाया कि तहक़ीक़ात करेंगे।

इस प्रकार सार्वजनिक अपमान के दलदल में वैयक्तिक फ़र्ज़ी सम्मान के काठ के टुकड़ों से चिपक शरीफ़ लोग डूबने से बचे रहते हैं।

६

## उतरा नशा

एक संसार है जिसमें हम रहते है ; यथार्थ संसार। यहाँ बेबसी की सीमायें हैं, कदम-कदम पर रुकावटें हैं। सुहावने फूल हैं, लुभावने अंगूरों के गुच्छे हैं, प्यास बुझाने को मोती उछालते झरने। है सब कुछ, लेकिन मजबूरी की ऊँची दीवारें हैं और असफलता के काँटेदार तारों की बाड़ों ने उन्हें घेर रखा है। दूसरा है काल्पनिक संसार, स्वप्न और आशा का। हाथ में कुछ न पाकर भी वहाँ आशा और कल्पना से ही मनुष्य सुखी हो जाता है। हमारे जीवन की सब साध और कोशिशें, आशा और कल्पना की दुनिया के चित्रों को वास्तविकता की दुनिया के परदे पर उतारने के लिये ही होती हैं। इस प्रयत्न में जितनी सफलता हो जाय वही जीवन की सार्थकता और उद्देश्य है। परन्तु कितने हैं ऐसे भाग्यवान् जो इस कोशिश में कामयाब हो पाते हैं ?

मास्टर चिरंजीत ने भी उन बहुत थोड़े लोगों में गिने जाने की आशा और कल्पना की थी, जो आशा को सफल कर पाते हैं। थोड़े लोगों की इस जमात ने अपना सौभाग्य बँटाने के लिये चिरंजीत को अपने दायरे में घुसने न दिया। यूनिवर्सिटी की सीढ़ियाँ, यह बड़ा आदमी बनने की आशा में वह सम्भ्रान्त समाज के किले की नींव के

चक्कर लगाता रहा और ठोकर से घायल हो गिर पड़ा ; क्योंकि नशे में आदर्श और वास्तविकता के भेद को भूल गया ।

यूनिवर्सिटी में दाखिल होने से पहले आयु कम रहने पर उसने घर में स्त्रियों को देखा था, माँ मौसी और बहिन के रूप में जो सदा गृहस्थी की झंझटों में फँसी रह कर बेरौनक हो जाती हैं । निरंतर देखते रहने के कारण उनके प्रति कौतूहल शेष नहीं रहता । माँ बेटे को पाल-पोस कर जवान मर्द बना अपने बुढ़ापे का सहारा बनाना चाहती थी ; बहिन जो घर के लिये बोझ होती है । अपने घर से बाहर गली-मुहल्ले में स्त्रियाँ और लड़कियाँ थीं, कुछ माँ जैसी, कुछ बहिन जैसी । कुछ लड़कियाँ देखने में अच्छी थीं जिनकी ओर आँखें उठ जातीं ।

प्रोफ़ेसर बन पाने की आशा से एम० ए० पास करने का कठिन परिश्रम करते समय चिरंजीत को अपने घर की अवस्था के प्रति अरुचि हो गई । वह सम्मानित और बड़ा आदमी बनने का स्वप्न देखने लगा । स्त्री के प्रति भी उसकी धारणा बदल गई । स्त्री उसकी दृष्टि में जीवन के माधुर्य का स्रोत, सम्मान-प्रतिष्ठा-पूजा और प्रेम की अधिकारिणी बन गई ।

साहित्य की मोटी पुस्तकों में हज़ारों पन्नों, लाखों पंक्तियों और करोड़ों अक्षरों के समुद्र पर तैरते समय उसकी कल्पना अपने भविष्य का चित्र बनाती । इस समुद्र को पार कर वह विद्वत्ता और प्रतिष्ठा के सिंहासन पर बैठा दिया जायगा । एक रूपवती, गुणवती, कोमलांगी प्रेम का प्रवाह उँड़ेलती 'मिसेज़ चिरंजीत' उसके पार्श्व में होगी ।

यूनिवर्सिटी प्रतिवर्ष साहित्य के सैकड़ों विद्वान् तैयार कर देती है । लैक्चरार या प्रोफ़ेसर बनने के लिये उतने विद्वानों की खपत नहीं होती । प्रोफ़ेसर न बन पाने की अवस्था में चिरंजीत को हाई स्कूल में मास्टर बनना पड़ा । मास्टर बनने में भी साहित्यज्ञान की अपेक्षा स्कूल के मैनेजर साहब के पास सिफ़ारिश का ही मूल्य अधिक ठहरा । सम्मान

सहित एम० ए० पास कर लेने पर भी बी० टी० पास न होने के कारण उसकी क़द्र साधारण बी० ए० से अधिक न थी। पी-एच० डी० बन सात-आठ सौ माहवार की आशा करनेवाले चिरंजीत को अस्सी रुपये माहवार का मास्टर बन मन मसोस लेना पड़ा।

इस नौकरी में हैडमास्टर साहब, स्कूल कमेटी के सेक्रेटरी साहब, मैनेजर साहब कितने ही साहबों के दरबार में सलाम बजा लाना और हाज़री देना ज़रूरी हो गया। जीवन की इस कठोर वास्तविकता को स्वीकार करने के सिवा चारा न था। आर्थिक असफलता ने जीवन का संपूर्ण रस चूस उसे खोखला कर दिया। फिर भी आशा थी, कभी सफलता का द्वार जीवन में खुल सकता है।

चिरंजीत के जीवन की कल्पना सफल न हो सकने पर जीवन के माधुर्य का स्रोत स्त्री भी उसके मार्ग से हट, दूर जा खड़ी हुई। स्त्री की जिस स्थिति और रूप का आदर्श उसके मन में था, वह रहता है फुल-वाड़ियों से घिरे बँगलों में। दस रुपया माहवार किराये के कमरे में रहनेवाले मास्टर की पहुँच वहाँ नहीं। जिन सुंदरियों की स्तुति कला और कविता अपना लक्ष्य समझते हैं, सबल पुरुष जिन अबलाओं का दास बन पाने में अपना गौरव समझता है, वे अपने ऊँचे सिंहासन से उतर ग़रीब मास्टर के आतुर हृदय के प्रति सहानुभूति प्रकट करने क्यों आतीं? सुविधा पूर्ण जीवन के साधनों से वंचित हो सुसंस्कृत नारी-रत्न पाने की आशा करना मास्टर चिरंजीत के लिये दुस्साहसमात्र था।

ग़रीब मास्टर को तृप्त करने के लिये न सही, हृदय की प्यास को ज़िंदा रखने के लिये ही जीवन की मरुभूमि में, नारी ने दूर से दर्शन, दिये। स्कूल के मैनेजर साहब के यहाँ हाजरी देने जाना चिरंजीत के लिये अपमान का कड़ुवा घूँट था परन्तु मैनेजर साहब की सौम्य पत्नी निर्मला का दर्शन, उनके मुख से सहानुभूति और सान्त्वना के दो शब्द उस मानसिक यंत्रणा का प्रतिकार भी कर देते।

स्कूल के मैनेजर लाला बनारसीदास का जीवन सार्वजनिक सेवा में अर्पित था। वे स्थानीय अनाथालय के मंत्री, म्युनीसिपैलिटी के मेम्बर, कांग्रेस के उपप्रधान और हाई स्कूल के मैनेजर थे। अनेक दूसरी संस्थाओं का भी बोझ अंशतः उनके कंधों पर था। आवश्यकता पड़ने पर लोग उनके मकान के बराम्दे में तखत पर बैठ उनकी सार्वजनिक सेवा की चर्चा किया करते।

पति के सार्वजनिक जीवन का बोझ निर्मला पर भी पड़ता। साधनों की प्रचुरता न होने पर भी समय-असमय अतिथियों के सत्कार की उलझन होती। पति की जनप्रियता और आदर देख उसे संतोष होता परन्तु सामर्थ्य की एक सीमा थी। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन की साध भी थी जो पति की सार्वजनिक जीवन में शक्ति प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा पर बलिदान हो रही थी। सार्वजनिक जीवन में प्राप्त होने वाले संतोष का सम्पूर्ण भाग लाला बनारसीदास के लिये ही था। जीवन से पैदा होनेवाली थकावट और झुँझलाहट सहनी पड़ जाती निर्मला को।

निर्मला का वह अधीन कातर भाव चिरंजीत के मन में सहानुभूति और आदर जगा देता। कार्य में व्यस्त, श्रान्त, अपने परिश्रम का कुछ भी परिणाम न पाती केवल दूसरों के संतोष और उपयोग के लिये जीवित थी। उसे अपने समान ही निर्मला भी समाज की व्यवस्था पर बलिदान जान पड़ती। उसे जान पड़ता, निर्मला का लावण्य, माधुर्य और कोमल नारीत्व पददलित हो रहा है।

मैनेजर साहब की चिरंजीत पर कृपा थी। बी० टी० पास उम्मीद-वार को नामंजूर कर उन्होंने उसे स्कूल में जगह दिला दी थी। अपने-पन का एक सम्बन्ध और अधिकार उससे हो गया था। घर के किसी काम को फुरसत में कर देने के लिये वे चिरंजीत से कह देते।

यूनीवर्सिटी की संस्कृति के कारण इस प्रकार के कामों से चिरंजीत

को अरुचि थी। फल या तरकारी का थैला लेकर चलना कुली के सिर पर बोझ लिवा लाना उसे सम्मान-जनक नहीं जान पड़ता था। निम्न श्रेणी के ऐसे काम, उसकी सम्मति में, नौकरों द्वारा ही कराये जाने चाहिये थे।

अपनी स्थिति से विवश चिरंजीत को मैनेजर साहब की कृपा के मूल्य में यह अरुचि निभा देनी पड़ती। वह मन को समझा लेता, भद्र महिला की सहायता करना उसका कर्तव्य है; यह काम निर्मला का है। प्रतिकूल परिस्थितियों में जैसे स्वयम् उसकी बेकद्री हो रही है वैसे ही निर्मला की भी। वर्ना फुलवाड़ी से घिरे बँगलों के बरामदों में बैठ, सदा गरमी और थकान की शिकायत करनेवाली भद्र महिलाओं से निर्मला किस बात में कम है? परन्तु उसके व्यक्तित्व का सौम्य, माधुर्य और सौजन्य सब चौके-चूल्हे की परिक्रमा में ही समाप्त हो रहा है। पुरस्कार में वह पाती है, पति के अधिकार से पुरुष की डाँट।

सार्वजनिक जीवन में सौजन्य दिखाने के लिये आतुर मैनेजर साहब घर के भीतर कितने कटु हो जाते। निर्मला के तनिक शैथिल्य, ज़रा-सी चूक से उनका आपे से बाहर हो जाना! बल्कि चिरंजीत को जान पड़ता, निर्मला की ओर से शैथिल्य और चूक न होने पर भी लाला बनारसीदास अपनी शक्ति और अधिकार के मद में बेबस निर्मला पर अत्याचार करने से संतोष पाते हैं। चिरंजीत से परदा न रहने के कारण ऐसे अनेक दृश्य उसके सामने घट जाते। चिरंजीत का खून उबल उठता पर इस अत्याचार को देख कर भी अनदेखा कर जाने के सिवा उपाय न था।

पराये घर के मामले में, पति-पत्नी के सम्बन्ध में, किसीके बोलने का क्या काम? अत्याचार की प्रतिक्रिया केवल मन में होकर रह जाती। वह सोचता, क्या निर्मला के समान कोमल शील व्यक्तित्व ऐसे निर्दयी और स्वार्थी के हाथों कत्ल किये जाने के लिये ही है? ऐसी अवस्था में

वह उठ कर चल देता। निर्मला की करुण अवस्था को भुला देने के लिये चिरंजीत गहरी साँस ले समाज में शोषितों की बेबसी की बात सोचने लगता।

× × ×

होली की छुट्टियों में मास्टर चिरंजीत अपने एक मित्र के यहाँ बनारस चला गया था। छुट्टी समाप्त होने से कुछ दिन पहले ही उसे लौट आना पड़ा। मैनेजर साहब का छोटा भाई यूनीवर्सिटी में बी० ए० के प्रथम वर्ष की परीक्षा दे रहा था। उनका अनुरोध था, चिरंजीत दो-एक दिन पहले लौट, छोटे भाई को परीक्षा की तैयारी में कुछ सहायता दे दे।

चिरंजीत अयोध्याप्रसाद को बाइरन और शैली की कविता के सम्बन्ध में समझा रहा था। मैनेजर साहब दस रुपये का नोट लिये भीतर से आ बोले—'आज संध्या तुम भी खाना यहीं खाना। कुछ लोग और भी आ रहे हैं'—तीन-चार चीज़ों के नाम ले उन्होंने कहा—'तुम्हें तो आज छुट्टी रहेगी। यह सामान ताँगे पर लिवा लाना....और अपनी भाभी से पूछ लेना। मुझे आज ज़रा-भी फ़ुरसत न होगी। न हो, अयोध्या को साथ ले लेना।'

चिरंजीत अयोध्याप्रसाद को पढ़ा, होली की मिलाई करने निकल गया। मैनेजर साहब के काम का ध्यान था, फिर भी मिलने-जुलने में बहुत समय निकल गया। सामान लिवा जब वह लौटा, निर्मला परेशान हो रही थी। दाल की पिट्ठी से सनी अँगुलियों की चुटकी से आँचल सम्भाल उसने कहा—'मैं तो सोच रही थी आपको कोई ज़रूरी काम लग गया, भूल गये या क्या हुआ ? इतनी देर हो गई........कैसे होगा ?'

संकुचित हो चिरंजीत ने उत्तर दिया—'हाँ, ऐसे ही कुछ हो गया....कहिये मेरे करने को कुछ हो तो कहिये !'

'नहीं, हो जायगा....!'—कृतज्ञता से भरे नेत्र उठा निर्मला ने उत्तर

दिया—'बैठिये।'. चिरंजीत संध्या को जल्दी आ, बाज़ार का या कोई दूसरा काम कर देने का आश्वासन दे चला गया।

संध्या समय चिरंजीत लौटा। आँगन से लाला बनारसीदास की क्रोध भरी झल्लाहट और दबे हुये स्वर में निर्मला का प्रत्युत्तर भी सुनाई दिया। चिरंजीत ड्योढ़ी में खड़ा रह गया। निर्मला की सास हाथ हिला कर कह रही थीं—'कई दफ़े तो कह दिया समझा के, पर कोई सुने ही न तो क्या करें? अपना तो कहने के सिवा और चारा क्या है?'

जो कुछ और जैसे बनाने के लिये बनारसीदास कह गये थे, ठीक वैसे ही न बना, निर्मला ने जो बन पड़ा बना दिया और अभी तक काम पूरा न हो पाया था। निर्मला कह रही थी—'इतने वक्त में जैसा कुछ हो सकता था कर दिया और क्या जान दे दूँ?........करते-करते मर जाओ, करने का कुछ नाम नहीं; ऊपर से सदा खाने को दौड़ते हैं। किसी को करना पड़े तो पता लगे। जिन्दगी में कभी चैन का दिन नहीं देखा। इससे अच्छा तो है भगवान उठा लें....!'

क्रोध पहले से ही था, निर्मला के इस विरोध से मैनेजर साहब आपे से बाहर हो गये—'बहुत मुंहज़ोर होती जाती है। खबरदार बकवास किया तो! झोंटा पकड़ के बाहर निकाल दूँगा। और कुछ समझ रखा होगा।'

चिरंजीत ने सुना और जैसे हृदय पर किसी ने पूरी शक्ति से मूसल दे मारा हो। निर्मला आँचल से आँसू पोंछती भीतर चली गई। चिरंजीत के लिये वहाँ खड़े रह अधिक सुनना न उचित था, न सह्य। वह उलटे पैर लौट गया। एक दफ़े ध्यान आया, उसी की गफ़लत से सामान विलम्ब से पहुँचा और निर्मला को यह सब सुनना पड़ा?....वह सब अपमान और तिरस्कार उसे स्वयम् अपना ही अनुभव होने लगा। निर्मला का झोंटा पकड़ बाहर निकालने का अर्थ था—उसकी अपनी

पीठ पर लात ! उस अत्याचार को सहने के लिये वह किसी प्रकार तैयार न था, पर करता क्या ?

मकान लौट, अपने कमरे के एकान्त में बैठ, उस अत्याचार की बात सोचने से वह और भी असह्य जान पड़ने लगा। तर्क करने पर बनारसीदास का व्यवहार और अधिक अमानुषिक जान पड़ने लगा।.... निर्मला का व्यक्तित्व कुछ भी नहीं ? क्या उसे इतना भी अधिकार नहीं कि घर के भीतर भी जो कुछ उचित समझे, कर सके ? और जो भी हो, किसी के व्यक्तित्व का इस प्रकार तिरस्कार और निरादर करने का अधिकार किसी को क्या है ?....

मैनेजर साहब की दावत में जाना सम्भव न रहा। दावत में जाने का अर्थ था, परोसने के काम-काज में हाथ बँटाना। मन के विद्रोह ने कहा, वह किसी का व्यक्तिगत नौकर नहीं है। क्षितिज पर सूर्यास्त हो अँधेरा घना हो गया ; परन्तु चिरंजीत के मन का उबाल शांत न हुआ। दावत में जाने का समय ही न रहा। वह कमरे में टहलने लगता, कभी खाट पर लेट जाता, उठ कर फिर टहलने लगता और कभी कुरसी पर बैठ जाता।

निर्मला पर होते, अनेक बार देखे, अत्याचार और उस संध्या के असह्य दृश्य की बात उसके मस्तिष्क को विक्षिप्त किये थी। उसका कोई प्रतिकार न कर सकने से आत्मग्लानि हो रही थी। छः बजे से वह कमरे में बन्द था। सात, आठ और नौ भी बज गये। एक ही विचार, अपमान और अत्याचार की वेदना और अपनी बेबसी उसे परेशान किये थी....वह क्या करे ?........वह क्या कर सकता है ? कुछ करने का उसे अधिकार क्या है ? बनारसीदास को अधिकार है, चाहे जो करे वह निर्मला का पति है। अपना सम्बन्ध निर्मला से कुछ है तो मनुष्यत्व के नाते। मनुष्यत्व कुछ नहीं....पति का अधिकार ही सब कुछ है। उसका सिर चकराने लगा। कमरा उसका दम घोंटने लगा। वह बाहर निकल पड़ा और मालरोड की ओर चल दिया।

माथे में ठण्डी हवा लगने से मस्तिष्क में भरी परेशानी और निराशा के नीचे से स्मृति ने कहा—उसने खाना नहीं खाया । खाने के लिये अपने मेस में वह अब लौटे तो समय न रहेगा। क्यों न वह आज किसी होटल में खाना खा ले ? उसकी स्थिति और उसके समाज की स्थिति की ओर तिरस्कार से देख, बेपरवाही से अपना मस्तक ऊँचा उठा रखने वाले होटल ! ऊँचे मचान पर बैठे समाज के जीवन के प्रति उसके मन में लोभ जाग उठा जहाँ दैन्य और संकीर्णता नहीं । वह भी वहाँ क्यों न जाये ? प्रतिदिन यह जीवन उसके सामर्थ्य के बाहर है परन्तु एक दिन वह भी उसे क्यों न देखे ?

पतलून की जेब में तहाकर रखे हुये दो नोटों को दबा कर उसने निश्चय किया रुपया है । बीस रुपये........एक दफ़े के भोजन के इससे अधिक कोई और क्या ले लेगा ! जब वह मूल्य दे सकता है, वह किससे कम है ? बनारसीदास की दावत की उसे क्या परवा ?

बिजली की रोशनी में जगमग होटल के बरामदे की सीढ़ियों पर बिछे कारपेट पर कदम रखता वह भीतर चला गया । भीतर हॉल में बड़ी मेज़ पर अकेले बैठने में संकोच हुआ । दोनों ओर, अलग अकेले में बैठ कर खाना पसन्द करने वालों के लिये, छोटे-छोटे कमरे बने थे । एक दरवाज़े की मूठ पर हाथ रख उसने किवाड़ खींच लिया । भीतर झांका ; दो आदमी खाना खा रहे थे । दूसरे कमरे में भी दो आदमी और एक महिला ।

होटल का बैरा दौड़ कर उसे खाली जगह दिखाये, इससे पहले उसने तीसरे कमरे का दरवाज़ा खोल दिया । यहाँ भी एक आदमी और तीन कुरसियाँ खाली । पीछे हटते-हटते मन में विचार उठा—वह यहाँ क्यों नहीं बैठ सकता ? वहीं एक कुरसी पर वह बैठ गया ।

बैरे ने तैयार भोजन की सूची तश्तरी में पेश की । कुछ समझ न आया । उस नई और बड़ी जगह का रोब चिरंजीत के मस्तिष्क पर

छा रहा था। खाना लाने के लिये उसने कह दिया। समीप बैठ भोजन करने वाले व्यक्ति से आँखें चार न करने के लिये वह मेज़ पर पड़ी राखदानी की ओर देखता रहा।

पहले से बैठा व्यक्ति अकस्मात एक अपरिचित के समीप आ बैठने से चिरंजीत की तरह संकुचित न हुआ। परिचय की चिन्ता न कर उसने कहा—'अभी मार्च का महीना है और गरमी का हाल देखिये !.... पंखे के बिना दिन में बैठना मुश्किल !'

'जी....!'—आँख उठाकर चिरंजीत ने उत्तर दिया।

बातचीत का प्रसंग चलाने के लिये उस व्यक्ति ने फिर कहा—'और गाड़ियों में भीड़ का यह हाल है कि सफ़र करना मुसीबत हो गया ! सेकण्ड-फर्स्ट और थर्ड में फरक ही कुछ नहीं रहा। क्या फरक है आजकल ? लोग लटकते चलते हैं ? आज इलाहाबाद से आया हूँ। मैं ही जानता हूँ, कैसे आया हूँ। बड़ी मुसीबत है !'

'जी....'—चिरंजीत का संकोच कुछ दूर हुआ—'ट्रेनों में तो वाक़ई बुरा हाल है। अभी बनारस गया था.........।'

चिरंजीत की बात की प्रतीक्षा किये बिना समीप बैठे साहब बोलते चले गये—'मुसीबत है क्या नहीं ? मिलता ही क्या है....यह देखिए'—अपने दाईं ओर रखी बड़ी सफ़ेद बोतल की ओर संकेत कर उन्होंने कहा—'यह देखिये, साढ़े सात रुपये में मिलती थी। आपको ताज्जुब होगा, आज सैंतीस रुपये-आठ आने दिये हैं इसके !........मिलती कहाँ है ?....यह भी दुकानदार ने बहुत एहसान किया। पुरानी वाक़फ़ियत है; हमसे हज़ार काम पड़ते हैं।....एक पैग आप भी लीजिये न....?' समीप दीवार पर लगी घण्टी का बटन उसने दबा दिया !

पलक मारते में बैरे ने दर्शन दिये। वह चिरंजीत के लिये ब्रेड लेकर आ ही रहा था। चिरंजीत के कुछ कह सकने से पहले ही बैरे

को उन्होंने हुक्म दिया—'सोडा !' झेंप कर चिरंजीत ने कहा—'रहने दीजिये। क्यों तकलीफ़ कीजियेगा...........मैं लेता नहीं !'

'नहीं, ऐसी कोई बात नहीं, साथ तो दीजिये न।'—उन्होंने उत्तर दिया और फिर उत्साह से अपनी बात कहने लगे। चिरंजीत उनकी बात न सुन कर सोच रहा था—'नहीं, वह नहीं पियेगा। उसने कभी नहीं पी। ऐसा काम वह नहीं कर सकता। वह स्कूल में अध्यापक है। कोई सुनेगा तो क्या कहेगा ? मैनेजर साहब यदि जान पायँगे।'

मैनेजर का ध्यान आते ही विचारों का प्रवाह जैसे सहसा चट्टान से टकरा कर पलट गया........सज्जनता और आचार का ढोंग करनेवाले ऐसे कपटी लोगों का ही मुझे डर है, मैं उनका गुलाम हूँ........? आचार की यह बेड़ियाँ बेबसों को बेजुबाँ कर उनका गला रेत देने के लिये ही हैं........। बेबसी से आँसू बहाती निर्मला की मूर्ति उसकी दृष्टि में काँपने लगी।........यह आदमी पीता है। अच्छा नहीं, पर सज्जनता तो है ; पाखण्ड तो नहीं !

वह कुछ कह न सका। उसके सम्मुख ला कर रख दिये गये काँच के स्वच्छ गिलास में मेज़बान बन जानेवाले व्यक्ति ने, न जाने अपनी कौन बात कहते-कहते, लगभग तीन औंस अत्यन्त निर्मल, उज्ज्वल, तरल पदार्थ उँड़ेल दिया और झाग उठाती हुई सोडे की बोतल गिलास में छोड़ते हुए पूछा—'सोडा कितना....?' मेज पर कोहनी टिकाये चिरंजीत को इस गिलास में दिखाई दे रहा था निर्मला के आँसुओं का ज्वार !

चिरंजीत इनकार करता तो पहले करना चाहिए था। अब चार-पाँच रुपये मूल्य के गिलास को फेंक, अकारण सज्जनता और अपनापन दिखानेवाले सज्जन के आतिथ्य का तिरस्कार कर वह मूर्ख बने ? और चिन्ता करे सदाचार का पाखण्ड करनेवालों की........। अपरिचित सज्जन ने अपना गिलास उठा, चिरंजीत के लिये तैयार किये गिलास

से धीमे से ठनकाकर कहा—'हमारी मित्रता दृढ़ हो।'—और एक घूँट ले गिलास मेज़ पर रख दिया।

चिरंजीत क्या करता? उसने कहा—'धन्यवाद।' और एक घूँट भर लिया, कुछ तीखा-सा, कुछ कसैला-सा, विशेष रुचिकर नहीं, परन्तु भयानक भी नहीं। सज्जन ने दूसरा घूँट लिया और उत्साह से स्टैलिनग्राड पर जर्मनों को पीछे हटा देने में रूसियों की आश्चर्यजनक दृढ़ता का बखान, भाव-भंगी से करने लगे। बरफ़ में दबी ठण्डी बोतल के घूँट ने गले से उतर बहुत देर से सोई प्यास को जगा दिया। चिरंजीत उस अपरिचित, अस्वादु परन्तु मूल्यवान् तरल पदार्थ के घूँट भरता जा रहा था और ख़याल आता था, आख़िर इसमें ऐसा है क्या! सामने रखा भोजन प्रतीक्षा कर रहा था। प्यास की अधिकता के कारण भोजन की ओर ध्यान देने से पहले ही चिरंजीत ने गिलास समाप्त कर दिया।

समीप बैठे सज्जन ने उत्साह से कहा—'थोड़ी और।' चिरंजीत के अनेक इनकार करने पर भी फिर से लगभग छटाँक-छटाँक भर तरल पदार्थ उन्होंने बोतलों से गिलास में उँडेल दिया और उस पर बैरे ने सोडा।

चिरंजीत को अनुभव हो रहा था, पंखे की हवा कुछ अधिक सुहावनी हो रही है, जैसे उसे ख़ूब भूख लगी है और सामने रखे भोजन विशेष रुचिकर हैं।........बातचीत करता वह खाना खाने लगा। खाते-खाते जैसे भोजन के स्वाद बढ़ाने के लिये वह गिलास से घूँट भरता जाता खाने में रुचि बढ़ती जाती।

भोजन के बाद चिरंजीत ने बिल की तश्तरी में दस रुपये का नोट रख दिया। बैरा शेष रकम लाया। तश्तरी से नोट उठा उसने जेब में रख लिये। इकन्नियों, चवन्नियों और अठन्नियों में विशेष अन्तर नहीं जान पड़ रहा था। वह सब उसने बैरे को बख़शीश में छोड़ दिया।

दृष्टि कुछ अस्पष्ट-सी हो गई। मेज़ की श्वेत चादर पर भाग-सी बिछी जान पड़ती थी,। झूलते किवाड़ों के किनारे एक की जगह दो दो दिखाई देने लगे। अनुभव हुआ, किवाड़ पर आवश्यकता से अधिक बल से धक्का लग गया। चलते समय मालूम होता था पाँव के नीचे स्प्रिङ्ग लगे हैं। होटल से बाहर आ, नये परिचित सज्जन, मि० सज्जाद, से ज़ोर का हाथ मिलाया, फिर मिलने की आशा प्रकट की और अपनी राह चल दिया।

रात की हवा बहुत सुहावनी जान पड़ रही थी। सिर जैसे कुछ हलका-हलका हो ऊपर उठा जा रहा था। विचार आया—शराब पीकर अच्छा नहीं किया। दूसरा विचार आया—बुरा क्या किया? किसी को क्या मतलब, मैंने क्या किया? लोग अपने घरों में जो चाहते हैं, करते हैं। जानवरों को मारना-पीटना, उन पर अधिक बोझ लादना जुर्म है; स्त्री को गाली देना, मारना-पीटना कुछ नहीं। दूसरे नौकरों और मज़दूरों की भाँति उसके लिये मेहनत-मज़दूरी के समय की भी सीमा नहीं।....मैं क्या किसी के बाप का नौकर हूँ? उसी समय मैनेजर साहब का ध्यान आ गया। अपने अनैतिक व्यवहार से उनके नाराज़ होने का भय मन में चुभा। इस आशंका को दुत्कार कर चिरंजीव ने कहा—वह कपटी, पाखंडी, जनता के सामने सज्जन बननेवाला, जनता का सेवक होने का दम्भ करनेवाला, निरपराध ग़रीब पर यों जुल्म करता है! उसे ऐसा करने का क्या अधिकार है? इस अत्याचार को रोकनेवाला कोई नहीं और मुझ पर शासन का अधिकार उसे?....... नहीं, ऐसा अत्याचार नहीं हो सकता है? मैं उसका सिर तोड़ दूँगा।

चिरंजीव की आँखें गरमा रही थीं, माथा उड़ा जा रहा था। जान पड़ता था, पाँव लड़खड़ा रहे हैं। मन में उबाल सा उठता, उसे किसी का डर नहीं, वह किससे कम है! निर्मला पर लाला

बनारसीदास के अत्याचार से वह क्रोध में पागल हो उठा। वह कौन होता है उस ग़रीब पर जुल्म करनेवाला? वह 'चौधरी मुहाल' की ओर चल पड़ा।

लाला बनारसीदास के यहाँ दावत हो चुकी थी। मेहमान लौट गये थे। निर्मला चौका समेट रही थी। रसोई के सामने खड़े बनारसीदास सन्ध्या के झगड़े का उपसंहार कर रहे थे। इंतज़ाम फीका रह जाने के क्रोध और खीझ का रंग उनके स्वर से दूर न हो पाया था—'जब हमने कह दिया था, उसमें समझने का सवाल क्या था? और तुम अयोध्या को भेज देतीं। और हमने कहा था तो उसमें बिगड़ने की बात क्या थी........?'

पीछे कदमों की आहट सुन उन्होंने घूमकर देखा, फ़र्श पर ज़ोर से कदम फेंकते हुए और असाधारण रूप से गर्दन ऊँची किये चिरंजीत खड़ा है। उसका भाव था, जैसे लड़ने के लिये आया हो। उनके कुछ पूछने से पहले ही आस्तीन ऊँची करते हुए उसने धमकाया—'क्या बक रहे हो?'

मैनेजर साहब कुछ समझ न सके। चुप विस्मित रह गये। परन्तु चिरंजीत स्वर ऊँचा कर कहता चला गया—'क्या समझ रखा है, बेजुबान के गले पर छुरी चलाता जाता है, बड़ा सज्जन बनता है, बदमाश! शरम नहीं आती! एक घूँसे में बत्तीसों दाँत बाहर निकल आयँगे। क्या समझ रखा है अपने आपको........?'

'क्या मतलब तुम्हारा?'—चिरंजीत की धृष्टता से विस्मित और क्रुद्ध होकर मैनेजर साहब ने धमकाया!

आस्तीनें समेटते हुए चिरंजीत दो कदम आगे बढ़ आया—'मतलब है क्यों नहीं? है मतलब! देखूँ, बोलो तो अब तुम उस ग़रीब से?'—निर्मला की ओर संकेत कर उसने कहा।

इस आशातीत धृष्टता से मैनेजर साहब स्तब्ध रह गये। छत से

छत से उनकी माँ ने दुहाई देते हुए पुकारा—'अरे, देखो तो इस बदमाश को ! तू क्या लगता है उसका ?'

'लगता हूँ'....— क्रोध में चिल्लाकर चिरंजीत ने हाथ का घूँसा बाँधते हुए उत्तर दिया।

मैनेजर साहब विस्मय की मूढ़ता से जाग उठे। अपने अधिकार को समझ, दरवाज़े की ओर अँगुली उठा उन्होंने कहा—'निकल जा सुअर, पाज़ी बदमाश !'

चिरंजीत ने लपक कर बनारसीदास की गर्दन पकड़ ली। वे अपनी गर्दन छुड़ाने का प्रयत्न कर ही रहे थे कि निर्मला चीख उठी—'मार दिया, बचाओ ! बचाओ !'

अयोध्या पड़ोस के मकान से लपक आया। दूसरे लोग भी आ गये। चिरंजीत को पकड़ कर बाहर निकाल दिया गया जो दस-पाँच घूँसे और लातें पड़ीं, उसकी ओर किसी का ध्यान न था। भद्र पुरुष घृणा से कह रहे थे—'पिये है, पागल है........पुलिस में दे दो !'

चिरंजीत भी बक रहा था—'पी है तो किसी के बाप का क्या लिया है ? चोरी है क्या ? हम बदमाश हैं, और वह बदमाश जो बेज़ुबान के गले पर छुरी फेरता है....!'

चिरंजीत की बदहवासी से भरी बातों की ओर ध्यान न दे क्षोभ से लोग कह रहे थे—'यह हैं आजकल के स्कूल मास्टर जो लड़कों को पढ़ायँगे-सिखायँगे !'

स्कूल की बदनामी के ख़याल से मैनेजर साहब ने चिरंजीत को पुलिस के हवाले कर देने का ख़याल छोड़ दिया। एक टाँगा पकड़, उसे उसके घर भेज दिया गया। घर आ, वह बेहोश पड़ रहा।

सुबह सूर्योदय के पश्चात् आँख खुलने पर वह रात की बात सोचने लगा। बीती घटना की धुँधली स्मृति स्पष्ट होने लगी। विक्षिप्त मानसिक अवस्था में शराब पी लेने का क्षोभ मन में हुआ। पति-पत्नी

के मामले में दखल दे, अपमानित होने की भूल के विषय में वह बहुत देर तक सोचता रहा। सबसे अधिक चिन्ता थी, स्कूल की नौकरी न रहेगी। वह स्वयम् ही स्कूल नहीं जायगा। स्कूल की नौकरी छूट कर बेकार हो जाने का दुख था ; परन्तु उससे अधिक क्षोभ था, शराबी होने के कलंक का।

होली की छुट्टी के बाद स्कूल खुलने का वह पहला दिन था। वह स्कूल न गया। बर्खास्त होकर निकाले जाने की अपेक्षा स्वयं न जाना ही अच्छा था। जो होना था, हो गया ; उसमें चारा क्या था ? शराब पी ही ली थी, तो चुपचाप घर लौट आता। दूसरा कोई मास्टर नहीं पीता, इस बात का क्या प्रमाण है ? चुपके से कई पी लेते हैं परन्तु मैनेजर के घर जा पति-पत्नी के मामले में दख़ल देना यही तो असल अपराध हुआ। शराब पीने की बात क्षमा हो सकती थी परन्तु यह धृष्टता कभी क्षमा नहीं हो सकती।

शराब पीने की लज्जा को स्वीकार करके भी दीन पीड़ित स्त्री की सहायता के लिये उत्तेजित हो जाने की बात पर वह मन में लज्जित न हो सकता। अत्याचार-पीड़ित की सहायता करने का उसने साहस किया। इस बात पर वह गर्व करना चाहता था परन्तु उस गर्व की नींव खिसक जाती; जब याद आता, साहस किया भी तो........नशे में !

यदि वह नशे में न रहता, साहस से निर्मला की सहायता में मैनेजर से लड़ता, मामला पुलिस में जाता....अदालत में वह स्त्रियों की अवस्था और अधिकार पर एक वक्तव्य देता जो अखबारों में छपता........उस नेपाली की तरह........पर यदि नशे में न होकर साहस किया होता....।

७

## डायन

पुन्दना का घर पांगी से दो दिन की राह पर ऊदा में था। घर क्या,........अपने जैसा घर तो उन लोगों के होता नहीं; पहाड़ी सड़क के किनारे पत्थर के ढोके जोड़ जैसे कोई प्याऊ बाँध दे या जमीन में गढ़ा खोद उस पर किसी तरह की छत डाल दी जाय।

कार लगते ढलवानों की जमीन खोद-पीट, गेहूँ, मण्डल या कोई दूसरा अनाज और तलैटियों में धान बखेर दिये। अपना धन ( भेड़-बकरियों के गोल ) हाँक पाँगी से नीचे रावी और चनाब बीच के जंगलों में उतर आये। बैसाख में फिर ऊपर चढ़ने लगे। बरफ़ के नीचे दबी फसल बरफ़ का जल पी और जेठ बैसाख की उजली धूप सेक, इन लोगों के लौटने पर कटने की प्रतीक्षा करती रहती है। कुछ मास गेहूँ, मण्डल की रोटी भेड़-बकरी के माँस, दूध, पनीर से खा, सुरा ( धान की शराब ) पी, नई फसल बो, यह लोग अपने पशुओं को फिर नीचे हाँक देते हैं।

पुन्दना के भाइयों के तीनों बाप एक-एक कर गुज़र गये। दो को तो पानी लग जाने से ऐसी बीमारी हुई कि रात भर सर्प का छत्र ओढ़े 'गृग्गा' के दरबार में चेलों ( पुरोहितों ) के थाली और डफ़ बजा, सिर हिला-हिलाकर देवता को रिझाने का यत्न करने पर भी देवता

रीझे नहीं। उनका अपराध भी कम नहीं था। गूग्गा को मनाये ( भोग लगाये ) बिना उन्होंने भेड़ का माँस खा लिया था। तीसरा चम्बा के जंगल में रीछ से जूझकर खेत रहा। रह गई बेचारी माँ अकेली चारों पुत्रों को लेकर। श्राद्ध, चेलों की सेवा और गूग्गा के भोग द्वारा पतियों की सद्गति करने में उसने धन, सुरा और अनाज कुछ उठा न रक्खा। शिव, ब्रह्मा, राम, गंगा, तुलसी, शालिग्राम और मार्कण्डेय सभी पूजे। फिर गूग्गा की इच्छा समझ, छोटे-छोटे बेटे और अपना शेष धन ले पाँगी के ऊँचे तंग दर्रों से चम्बा के जंगलों में उतरने लगी।

पुन्दना चारों भाइयों में बड़ा था। ग्यारह बरस की आयु में ही कमर की रस्सी से हँसिया लटकाये, सफ़ेद कम्बल के घेरदार कपड़ों को अपनी मस्तानी चाल से झुलाता, कंधे पर लम्बी लाठी रखे, ऊँची टोपी पहने वह अपने गोल के आगे-आगे यों चलता जैसे प्रतापी सेनापति देश विजय के लिये जा रहा हो। बेटे को देख माँ की छाती सान्त्वना से भर जाती। उसे समंग की याद आ जाती। आयु में सबसे कम रहने पर भी समंग ने ही उसे सबसे पहले पुत्रवती किया था। उस महाकाय रीछ से वह कैसे लड़ा! लोग कहते थे यदि वह रीछ रतांग-जोत की देवी का रीछ न होता तो समंग हँसिये से उसका पेट ज़रूर फाड़ देता। रीछ ने उसे बेखबरी में पीछे गर्दन से दबोच लिया। समंग भूमि पर पड़ा अपना हँसिया भी न ले पाया। देवी की इच्छा, गूग्गा की इच्छा।

पुन्दना की माँ ने कुल्लू के मेले में समंग को तलवार ले नाचते देखा और ब्याह कर इस घर में चली आई। नहीं तो जैसा उसका रूप-रंग और घर था, वह डोली चढ़ लाहौल के किसी चन्द्रबंसी ठाकुर के घर जाती और तीन-तीन सौतिनों के साथ पलंग पर बैठ चकोरों को चूरी खिलाती। अब ऊदा से चम्बा के जंगलों तक उसकी पेशवाज़ की चिन्दियाँ गर्मे की झाड़ियों में लटक रही थीं; समंग के लिये ही तो। अब उसका शेर बेटा पुन्दना था, कैसे बारह सींगों की तरह गर्दन उठा

कर चलता है।....देवी उसकी रक्षा करे—गूग्गा उसकी रक्षा करे! हर महीने कोई न कोई भेंट, मुर्गी-बत्तख या भेड़ बकरी का मेमना. अपने चारों बेटों के सिर से उतार कर देवता को चढ़ा देती। चेले बुढ़िया के बेटों के संकट की सम्भावना अपने सिर ले उदारता से उसे शुभ आशीश देते रहते।

अपने बच्चों को देवता की कोपदृष्टि से बचाते-बचाते बुढ़िया ने तेरह बरस बिता दिये। अब एक ही कामना माँ के हृदय में शेष थी; किसी तरह एक औरत ला, चारों बेटों का जनेऊ कर, उनका ब्याह कर देती।

चढ़ते क्वार में पुन्दना अपना धन चराते-चराते पाँगी के दक्खिन-पच्छिम उतर रहा था। परना के वीरान में देस के कुछ आदमी मिल गये, दो साहब और तीन कुली। 'देस' से मतलब स्वर्गीय पहाड़ से परे का देश, जहाँ नमक और चीनी होती है। जहाँ की औरतें जादू-टोना कर मर्दों को भेड़ बकरी बना बाँध लेती हैं। जहाँ रुपया फसलों की तरह फलता है। उस देश के प्रति पहाड़ के समझदार लोगों में कितना सन्देह, घृणा और आशंका नहीं बसी रहती।

देश के यह लोग; जैसे कि देश के लोग होते हैं, बड़े आदमी-अमीर थे। बिना किसी प्रयोजन के दुरुह पहाड़ चढ़ पाँगी जा रहे थे। राह भटक गये। बरफ़ से ढंकी एक ढलवान पर फिसल जाने से एक साहब की टाँग टूट गई। कुली तीन थे। डोली बना साहब को चम्बा तक ले जाने के लिये एक और कंधा दरकार था।

रुपया दिखाकर पुन्दना और उसके भाइयों को फुसलाया गया। वे आशंका से ठिठक गये। लड़कों को भ्रम में उलझते देख माँ ने आगे बढ़ सिर और हाथ हिला, रुपयों के लिये आदमी को सिर पर ढोने से इनकार कर दिया। लड़कों और धन को ले वह जंगल में हट गई।

पुन्दना का मन जाने किस कौतूहल या सहानुभूति से देश के

लोगों की ओर खिंच गया। भाइयों के लड़ने-झगड़ने और माँ के आँसुओं की चिन्ता न कर वह जंगल में छिपता-छिपाता साहब की डोली में आ लगा। पाँच दिन चल डोली चम्बा पहुँची और फिर पुन्दना को नदी पार कर डलहौज़ी जाना पड़ा।

साहब को हस्पताल पहुँचा देने पर पुन्दना को दो मुट्ठी भर रुपये मिले। इतने रुपये पुन्दना ने कभी काहे को देखे थे। चार-चार की ढेरी कर उसने रुपयों को कई बार गिना। वे चार और दो कम उतने ही थे जितना उसका धन-भेड़ बकरियाँ। चारबार चार, चारबार चार, और फिर दोबार चार और फिर चार।

डोली से मुक्ति पा पुन्दना हस्पताल के दरवाज़े पर बैठ डलहौज़ी की दुनिया को विस्मित आँखों से देख सोच रहा था, क्या करे? परना लौट, भाइयों को ढूंड रुपया दिखाये! लौट तो जाय, पर शाम होरही थी और भूख ज़ोर से लगरही थी। इतने दिन तो आटा-चावल साहब लोग देते रहे। अब कहाँ से ले? देश में दुकान होती है। जहाँ यह सब चीज़ें रुपये से मिलती हैं। पर वह दुकान कहाँ है? वह तो सड़क-सड़क सीधा हस्पताल चला आया था।

हस्पताल के फाटक पर बैठा पुन्दना आशंका से इधर-उधर देख रहा था। कम्पाउण्डर साहब ने आकर पुकारा, 'हाँ नौकरी करेगा!' उन्हें घर के लिये एक नौकर की तलाश थी।

ठीक से कुछ न समझ, पुन्दना ने सम्बोधन करने वाले की ओर आँखें उठाईं। इस पहाड़ी जाहिल को अपनी बात समझाने के लिये कम्पाउण्डर ने हाथों से संकेत कर बताया, ऐसे-ऐसे काम करेगा तो खाना देगा, रुपया देगा। उन्होंने कौर मुखकी ओर लेजाने और रुपया बजाने का संकेत किया। अधिक रुपया पाने और खाना मिलने की आशा से पुन्दना ने सिर हिलाकर अनुमति देदी।

कुछ दिन समझने-समझाने में कठिनता हुई। पुन्दना गूंगे बहरे

की भाँति इशारों से काम करता रहा। जल्दी ही वह अच्छा-खासा नौकर बन गया। दो समय खाना खाता और काम करने से न थकता। कुछ दिन में वह बात-चीत भी करने लगा, समझदार और विश्वास के योग्य बन गया। ऊँची जात के राजपूत होने से पर्दे और इज्जत का खयाल और आमदनी कम। कम्पाउण्डर साहब को एक सीधे, सस्ते और विश्वासी आदमी की आवश्यकता थी। उन्हें आराम हो गया। पुन्दना का मन भी डलहौज़ी में लग रहा था। रंगबिरंगी दुनिया और आराम की जिन्दगी। भाइयों और माँ की याद आती ज़रूर पर वह सोचता—देखा जायगा, पहले कुछ दुनिया तो देख लें।

× × ×

कम्पाउण्डर नज़रसिंह का घर था ज़िला कांगड़ा, पालमपुर में। सियाँराजपूत होने के कारण स्त्री और लड़कियाँ पर्दे में रहतीं। आरम्भ में पुन्दना कुछ ऐसा जाहिल सा मालूम हुआ कि नज़रसिंह के यहाँ उसका नाम 'जम्बा' ( पागल ) पड़ गया। जम्बे से क्या पर्दा होता। बड़ी लड़की सुर्जू सियानी थी परन्तु जम्बे से उसने कुछ संकोच न किया। कांगड़ा जिला में भले घर की लड़की के ब्याह में भी खास दिक्कत नहीं। जस और पुण्य कमाने के लिये भले ही कोई दान-दहेज दिया करे परन्तु साधारणतः ब्याह के खर्चे के रूप में या लड़की का मूल्य ससुराल से ले लिया जाता है। कम्पाउण्डर बहुत दिन से परदेस में थे। घरबार, जात बिरादरी से दूर लड़की के ब्याह में देर होती गई और वह अठारह बरस की हो गई।

आरम्भ में पुन्दना के प्रति सुर्जू के व्यवहार में 'जम्बे' का तिरस्कार सा था। जब पुन्दना जम्बे का अर्थ समझ जम्बा पुकारे जाने पर मुस्करा देने लगा तो दोनों में एक तनातनी सी, कुछ होड़ सी होने लगी। कम्बल के झूलदार कपड़े, ऊँची टोपी छोड़ जब पुन्दना देश के लोगों जैसा कुर्ता-पाजामा पहन हजामत बनवाने लगा तो भला चंगा

जवान दीखने लगा । खूब साफ़ रंग और उठता बदन । उसे देख सुर्जू के मन में लजाने की सी इच्छा होने लगती । पुन्दना में खान्दानी नौकर का दैन्य न था और न नज़रसिंह के घर में कभी हाथ से काम न करने का गुरूर ! छेड़-छाड़ और तनाव में कुछ रहस्य सा अनुभव होता । पुन्दना समझता, सुर्जू निरर्थक शिकायत और असंतोष दिखाती है । सुर्जू को अनुभव होता, पुन्दना हुज्जती है । लेकिन क्रोध प्रकट करते समय बात रह नहीं पाती । चौके में, भैंस को पानी दिखाते समय या वैसे कभी अकेले में सुर्जू को लज्जा और सिहरन सी होने लगती । सुर्जू का मन आशंका से कहता, नहीं यह ठीक नहीं । कभी वह चुपके से उसकी ओर देखती रह जाती । आँखें चार हो जाने पर गहरी लज्जा अनुभव होती । सोचती, जाने वह समझता भी है या नहीं । जब निश्चय हो गया कि वह समझता है तो मन में एक आशंका भरा संतोष सा समा गया ।

सुर्जू ने देखा, पुन्दना की आँखें गुलाबी हो जाती हैं । वह सचमुच हाथ डाल देना चाहता है । भय से ऐसा जान पड़ा कि लड़खड़ा कर गिर पड़ेगी । सुर्जू के भय और आशंका की भावना को ठीक से न समझ पुन्दना निराश और उद्विग्न सा होने लगता । सुर्जू दुखी होती पर उसे बरज भी न सकती । एक दिन पुन्दना ने सुर्जू को गोहरन ( भैंस बाँधने की जगह ) में अकेले देख सचमुच पकड़ लिया । काँप कर और रोकर सुर्जू ने कहा—'हाय तेरे पाँव पड़ती हूँ, ऐसे नहीं, मर जाऊँगी !' और फिर स्वयं उसके गले में बाँह डाल बैठी ।

पुन्दना का पागलपन प्रौढ़ नज़रसिंह की नज़रों में आया । चोरी का अपराध लगा, लाठी मार, सब रुपये छीन उसे घर से निकाल दिया और धमकी दी, बेईमान चोर को पुलिस के हवाले कर देंगे । सुर्जू को चौढ़ ( दुमंज़िले की कोठरी ) में बन्द कर मार पड़ी । होंठ बन्द कर सुर्जू सब सह गई । दिल में उसने कहा, वह तो पुन्दना की हो चुकी ।

या तो पुन्दना के पास जायगी या राजपूतनी की तरह पेट में हँसिया भोंक जान दे देगी।

माँ के गहनों के डिब्बे से सोने का बुलाक ले बूढ़ी मेहतरानी के हाथ पर रख उसने बिनती की—'पुन्दना को बाज़ार में ढूंढ, आधी रात में हस्पताल के नीचे सड़क पर आने को कह दे।'

पुन्दना आया। सुर्जू पलंग की पाटी में चादर बाँध दुमंजिले की खिड़की से कूद गई। काली रात में बाँह का सहारा दे पुन्दना उसे 'चुड़ैल-डगडा' की पहाड़ी लाँघ खजियार की ओर चल पड़ा। पत्ता खटकने से भूत और चुड़ैल के भय से दोनों के रोम साही के कांटों की भाँति खड़े होजाते। सहारे के लिये वे एक दूसरे से चिपट जाते, मरेंगे तो एक साथ! किसी आदमी की दृष्टि पड़ने की अपेक्षा चुड़ैल के दाँतों से कलेजा फड़वाना उन्हें स्वीकार था। पौ फटने से पहले वे बारह मील खजियार लाँघ गये।

पर्दे में रहने वाली बेचारी सुर्जू कभी पत्थरों पर काहे को चली थी। उसके पावों से लहू जाने लगा। पुन्दना ने उसे कंधे पर उठा लिया और दूनी चाल से दौड़ निकला।

× ×

दूसरी फसल काटने के समय पुन्दना की माँ और भाई अपना धन हाँकते हुए ऊदा पहुँचे। पुन्दना भी घने जंगलों, बीरान पहाड़ियों और बरफ़ से ढंकी ढलवानों पर से फिसलता सुर्जू को अपनी पीठ पर लिये ऊदा आ पहुँचा।

माँ और भाई हृदय उमड़ आने से पुन्दना को गले लगा रोये और फिर प्रसन्नता से किलकारिय भर नाचने लगे। कुल की रीति छोड़ पुन्दना के देस चले जाने से भाइयों का सिर नीचा होगया था। उनका ब्याह न हो सका। ऐसे घर में अपना लड़की कोई कैसे देता? अब वह

लौटा तो औरत लेकर। हर्ष और गौरव से माँ की छाती दूनी होगई। सुर्जू की ठोड़ी छू, सिर सूंघ माँ ने आसीस दी—'कुलवंती हो!'

पुन्दना के घर समृद्धि देख कई घराने जलने लगे। उन्होंने बात उठाई, देस की औरत पुन्दना के घर आई है। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। इसके लिये देवता की स्वीकृति लेना ज़रूरी है।

पंचायत हुई। गूग्गा की प्रतिमा के समीप चेले (पुरोहित) ज्ञान चेताने बैठे। मटकी भर सुरा (धान की शराब) पी, घड़ा भर लोहे की जंजीरों से अपनी पीठ छील, चेलों ने वाणी की—'पुन्दना की माँ बिरादरी की पंगत कर दस भेड़ों और दो मशक सुरा की बलि दे तो पुन्दना के घर की औरत कुल की औरत हो।'

खूब ज्यौनार हुई। पुन्दना के घर की दस भेड़ों के साथ आधी से अधिक फ़सल भी उड़ गई। माँ को इस सब की कोई चिन्ता नहीं थी। देवता प्रसन्न रहें! उनकी दया से घर में औरत आई; वंश तो चलेगा। पुन्दना की माँ कमर में ऊन की रस्सी लपेट दावत में नाची। बिरादरी के दूसरे लोग भी ईर्षा छोड़, सुरा पी हाथ में तलवार और भाला ले जी भर नाचे। इस सब उत्साह और विनोद से सुर्जू एक आतंक में रहगई।

छुटपन से पहनी पोशाक कुर्ता-सिलवार और ओढ़नी की जगह उसे कम्बल की पेसवाज पहना, कमर में ऊन की काली रस्सी बाँधी गई। वह सब कुछ सहगई। पुन्दना के लिये वह सब कुछ करने के लिये तैयार थी, सब कुछ सह्य था।

देवता की पंगत समाप्त होते-होते पुन्दना के घर में सुर्जू ने झगड़ा खड़ा कर दिया। उसने कहा—'मैं पुन्दना की औरत हूँ। दूसरा कोई मुझे छू नहीं सकता। यह सुन माँ और भाइयों के तो सिर पर जैसे नीले अम्बर से बिजली गिर पड़ी। सास ने दोनों हाथों से गाल छू सुर्जू को समझाया—'यह भी कभी हुआ है? जैसे मेरा बेटा पुन्दना वैसे उसके भाई। यह क्या तू डायनों जैसी बातें करती है? अपने चारों बेटों के

तीनों बापों में मैंने कभी बाल भर फरक किया हो तो मेरे अंग-अंग में कीड़े पड़ें, मरकर मुझे गंगा न मिले ! तू कैसी कुलनासी बातें करती है ? औरत क्या कहीं एक भाई की होती है ? धरती और औरत क्या कभी किसी एक भाई की हुई है ? माँ होकर मैं यह कैसे देख सकती हूँ। मेरे घर क्या दो-दो चार-चार औरतें आयेंगी। तू क्या मेरा कुल तितर-बितर कर सत्यानास करना चाहती है ?'

पुन्दना ने भी समझाया, जगह-जगह का धर्म होता है। सुर्जू नहीं मानी। उसने कहा—'चाहे मेरा अंग-अंग हंसिये से काट डालो, ऐसा अनाचार मुझसे न होगा।' भाई बैठे परस्पर झगड़ा और सलाह करते रहे और सुर्जू बेबसी में पत्थर पर सिर पटक-पटक रोती रही।

कोई उपाय न देख पुन्दना ने कहा, वह सुर्जू को ले 'देस' लौट जायगा। तीनों भाई हंसिये हाथ में ले खड़े होगये, कि घर में औरत आई तो एक भाई समेट कर बैठ जाय यह कैसे हो सकता है ? माँ ने भी समझाया, औरत के लिये घर का बेटा कैसे खो दिया जाय। और फिर सुर्जू के लिये दस भेड़ें और आधी फसल क्या बिरादरी की पंगत में नहीं लगी हैं ?

माँ ने सियानों को बुला उपाय पूछा। चेलों ने अन्तर्ध्यान हो परामर्श दिया—'औरत के सिर डायन चढ़ी है। डायन झाड़ी जाय तो औरत ठीक हो। डायन उतर जानेपर वह छल-फरेब छोड़ देगी।'

सुर्जू को पकड़, उसके मुँह में हँसिये का डण्डा अड़ा, चेलों ने ढेर सी सुरा पिलादी। उसकी आँखें लाल होजाने पर सिर के केश खोल दिये गये। चेले उसे घेर गूग्गा के दरबार में बैठे। डफ-थाली और लोहे की सांकलें बजा, सिर हिला-हिला चेले बाणी कहने लगे। सुर्जू भी चेलों की भांति सिर हिलाने लगी। कभी किलकारियाँ भर चिल्लाने लगती—'गई, डायन गई.... देस को !' लोगों को विश्वास होगया देवता की कृपा से औरत के सिर से डायन निकल गई।

पुन्दना और उसके भाई निढाल सुर्जू को चारों ओर से सहारा दे घर ले आये। सुर्जू पुन्दना के भाइयों के कंधे का सहारा ले डगमगाती घर पहुँची। पुन्दना के भाइयों के किसी प्रकार के व्यवहार का उसने विरोध नहीं किया। दूसरे दिन सुबह उठते ही पुन्दना की माँ बहू के व्यवहार से सन्तुष्ट हो, गुग्गा की प्रदक्षिणा कर चेलों के घर भेंट दे आई।

सुरा का प्रभाव मिटने पर सुर्जू बिलकुल चुप्प, सिर लटकाये सोचती रही और फिर एक बावलेपन में उठ, क्रोध से आँखें लाल किये बाल खोले, अस्त-व्यस्त वस्त्रों से भागती हुई गुग्गा देवता की समाधि के समीप पहुँची और खूब गहराई में चट्टानों पर गिरते झरने में कूद पड़ी।

माँ ने निराशा से सिर पीट लिया। आस-पास की बस्तियों के सियाने इकट्ठे हुये। उन्होंने कहा—'हज़ार जतन करो, देस की डायन भली औरत कभी हो नहीं सकती.......यह औरत डायन न होती तो इसे झरने में कूदने से डर न लगता ?'

८

## सोमा का साहस

मिसेज़ चड्ढा अपनी बड़ी लड़की कुसुम की सगाई का बुलावा देने मिसेज़ गुर्टू के यहाँ गई थीं। मिसेज़ गुर्टू ने विश्वास दिलाया—'वाह आऊँगी कैसे नहीं ? कुसुम जैसे तुम्हारी बेटी वैसे मेरी।'

रामप्यारी चड्ढा ने कहा—'उस दिन तुम्हारे यहाँ वह कौन लड़की थी ? क्या नाम था....सोमा ! उसे भी बुलवा लेना। बहुत अच्छा गाती है, गला बड़ा मीठा है। पास-पड़ोस की लड़कियाँ और कुसुम की सहेलियाँ भी आयेंगी। तुम्हारी कृपा से ज़रा रौनक हो जायेगी। मेरी ओर से मिन्नत कर देना।'

मिसेज़ गुर्टू ने फिर विश्वास दिलाया—'फिक्र न करो, मैं उसे भी लाऊँगी, मेरी बात वह कैसे टाल सकती है।'

लाला रामदास चड्ढा के यहाँ कुसुम की सगाई का समारोह खूब जम रहा था। मर्दानी बैठक में बिरादरी और मित्र लोग गप-शप कर रहे थे। इस ज़माने में भी लड़की के लिये अच्छा और लायक वर चुन लेने की प्रशंसा कर बधाई दे रहे थे। भीतर उससे कहीं अधिक जमाव स्त्रियों का था। जैसा साड़ियों के रंग का वावेला वैसा ही शोर भी। सभी कुछ न कुछ बोल रही थीं। दूसरे की बात सुनने की चिन्ता किसी

को न थी। साड़ियों और ज़ेवरों की उस नुमायश और शोर में, आँखों और ओठों पर रहस्य भरी मुस्कराहट लिये सोमा चुप सी यों अलग जान पड़ती थी जैसे रत्तियों से भरी थाली में मटर का एक सुफ़ेद दाना आ पड़ा हो। जैसी उसकी नीरव मुस्कराहट थी वैसी ही उसकी साड़ी, गेरुआ रंग की लाल किनारे दार ; कानों में सीप के टॉप्स और हाथों में रबड़ की एक-एक लाल चूड़ी।

उत्सव की परेशानी में हाँफते हुए मिसेज़ चड्ढा रामप्यारी ने सोमा के समीप आ अनुरोध किया—'तुम कुछ गाओ न! तुम्हारे लिये बाजा मँगा रक्खा है।'

मुस्कराते हुए होंठ खोल सोमा ने मिसेज़ गुट्टू की ओर देख धीमे से कहा—'गाना मुझे आता कहाँ है।'

अधिकार के स्वर में मिसेज़ गुट्टू ने रामप्यारी का अनुमोदन किया—'हाँ ज़रूर सुनायेगी। कितना अच्छा तो गाती है। मैं तो कहती हूँ, कुसुम और दूसरी लड़कियों को भी सिखलायें तो अच्छा है।'

बाजा आ गया। कुछ लजाते हुए सोमा ने बाजे का पर्दा खोल स्वरों पर हाथ रखा। हारमोनियम का स्वर कमरे में जमा स्त्रियों के कोलाहल से ऊँचा उठ गया। विस्मय से आँखें फाड़, ठोड़ी पर उँगली रख, अकस्मात बाजा बजा देने वाली की ओर वे देखने लगीं।

कमरे में छागये सन्नाटे से सकुचा कर सोमा ने मिसेज़ गुट्टू की ओर देख आज्ञा के लिये पूछा—'क्या गाऊँ ?'

'कुछ सुनाओ, वही सुना दो जो उस दिन सुनाया था'—मिसेज गुट्टू ने उत्तर दिया और गर्व से गर्दन ऊँची कर माथे का आँचल सीधा करते हुए उपस्थित स्त्रियों पर अपना प्रभाव देखने के लिये दृष्टि दौड़ाई। उस समाज में उनकी स्थिति और आदर सबसे अधिक था। उनके पति बैरिस्टर गुट्टू बड़े आदमी थे, कामयाब वकील और कितनी ही संस्थाओं के कर्ता-धर्ता।

सोमा ने धीमे स्वर में खम्माच उठाया और तीव्र में गाने लगी। गाना कमरे की स्तब्धता में भर गया। गाना पूरा होने पर सुनने वालियों की ओर दृष्टि जाने पर जान पड़ा, यत्न से शुद्ध राग गाने के परिश्रम से किसी को विशेष संतोष नहीं हुआ। उसके इस गाने की क़द्र, दीवार के उस पार बैठ सुनने वाले पुरुष समाज में ही अधिक हुई। राग की परख न होते भी स्त्रियों को गाना सुनने का कौतूहल था। स्वर और ताल का ऊँच-नीच न समझने पर भी गाने का स्वर तो कान में मीठा लगता ही है। कुसुम की एक सहेली ने आगे बढ़ कर कहा—'और सुनाइये भन जी!'

कुसुम की माँ और मिसेज़ गुर्टू के समर्थन करने पर सोमा ने दूसरा गाना सुनाया। सिनेमा की चलती हुई चीज़, 'तुमी ने मुझको प्रेम सिखाया........' सोमा का चुनाव समय-स्थान के अनुकूल था। उपस्थित महिलाओं के होंठ थिरक गये। जवान लड़कियाँ हृदय में गुदगुदी अनुभव कर खिल उठीं।

सोमा का गाना अभी समाप्त न हुआ था, नीचे आँगन से बच्चों की भयार्त चिल्लाहट सुनाई दी। कुसुम की माँ—'हाय यह क्या?—कह छज्जे की ओर भागी और उनके पीछे सभी स्त्रियाँ। सोमा भी बाजा बन्द कर उस चिल्लाहट का कारण जानने के लिये छज्जे पर पहुँची।

सगाई के जलसे में आये इतने अधिक आदमियों के खाने के प्रबन्ध के लिये लाला रामदास ने आँगन में, नीचे ज़ीने के दरवाज़े के पास ही भट्टी बनवा दी थी। पूरियाँ उतारने के लिये हलवाई आया था। दोपहर के खाने का सरंजाम चौथे पहर तक पूरा कर हलवाई कढ़ाई भट्टी से नीचे उतार चला गया। आँगन में दो पलंग पड़े थे। भट्टी के आस पास मैदा सनी खाली थोरी, हलवाई के बैठने के लिये पीढ़ा, ऐसे दूसरे ही सामान पड़े थे। वहीं नीचे बच्चे खेल रहे थे। किसी रोक टोक करने वाले की आँख न रहने के कारण बच्चों ने खेल-खेल में

आँगन में दायें बाज़ू गाय बाँधने की जगह से भूसी उठा-उठा भट्ठी में डालनी शुरू करदी। भट्ठी अभी लाल थी, भूसी डालने पर जगमगा उठती और पतंगे जल-जल कर ऊपर उड़ते। बच्चों के लिये यह मनोरंजक खेल था। भूसी के बाद उन्होंने नीचे बिछी बोरी पर फैली मैदा समेट भट्ठी में डालना शुरू किया। किसी बच्चे ने मैदे में सनी बोरी ही उठा भट्ठी में झोंकदी।

बोरी के भलभला कर जल उठने और उड़-उड़ कर बाहर गिरने से ज़ीने की किवाड़ों में आग लग गई। किसी तरह आग की लपट समीप खेलती, कुसुम की सबसे छोटी बहन, शशो की मखमल की फ्राक में छूगई। बच्चे भय से चिल्ला उठे।

लड़की के कपड़ों में आग लगी देख कुसुम की माँ चीख उठी और बेहोश होगई। कई दूसरी मेहमान स्त्रियाँ भी चिल्ला उठीं। चिल्लाहट सुन लाला रामदास और दूसरे लोग दौड़ आये। ज़ोर-ज़ोर से नौकरों को पुकारा जाने लगा। मेहमानों की ख़ातिर से थक के लोग पीठ टिकाने और चिलम का दम लगाने इधर-उधर सरक गये थे।

मकान की बनावट ऐसी थी कि आँगन का फ़र्श सड़क से नीचा होने और सड़क किनारे के कमरों की कुर्सी ऊँची रहने के कारण आंगन के चारों ओर केवल गाय बांधने और असबाब रखने की जगह थी। ऊपर से सम्बन्ध था केवल जीने से। आंगन से एक दरवाज़ा गाय और असबाब के आने जाने के लिये बगल की गली में खुलता था। गली से अवारा बछिया या कुत्तों के भीतर न आने देने और बच्चों को भागने से रोकने की सावधानी में नौकर इस दरवाज़े में ऊपर की साँकल चढ़ा गये थे।

दो एक साहसी पुरुषों ने जलते ज़ीने से आँगन में जाने की हिम्मत बाँधी। धुआँ घुट जाने और लपटों के कारण उन्हें लौटना पड़ा। 'रस्सी, रस्सी लाओ........धोती बाँध के उतर जाओ!'—सब ओर सलाह

मशविरे और भयभीत स्त्रियों की चिल्लाहट का शोर मच रहा था। नल और बिजली के ज़माने में मकान में रस्सी का क्या काम ? लोग पलंगों की निवाड़ और दावन की ओर लपके परन्तु इस सब से पहले किसी से कुछ न कह, सोमा छज्जे के छोटे जंगले के उसपार लटक गई और नीचे पलँग पर कूद पड़ी।

नीचे पहुँच उसने हाथ पैर पटकती और चिल्लाती लड़की को उठा अपनी साड़ी के आंचल में लपेट लिया। इस दृश्य से चकित लोगों का शोर थम गया। इतने में नौकर भी आ पहुँचे। पानी की बाल्टियाँ ज़ीने पर बह गईं। दो मिनिट में आग समाप्त हो गई।

भय से सहमी लड़की को साड़ी के आंचल में लपेट, गोद में लिये सोमा पुरुषों और स्त्रियों की चकित आँखों के सामने से ज़ीने का कीचड़ और पानी लांघ ऊपर आगई। लड़की का शरीर जगह-जगह से झुलस गया था। तुरंत डाक्टर बुलाया गया।

सगाई के जलसे का रंग भय और स्तब्धता में बदल गया। कुसुम की माँ को होश आया तो वे आँसू पोंछती हुई लड़की के बिछौने के पास आ बैठीं।

कुछ मिनिट बाद दुर्घटना के आतंक से छागई स्तब्धता में धीमे-धीमे बोलने की फुसफुसाहट शुरू हुई और फिर शीघ्र ही स्त्रियों की बातचीत का शोर मच गया। अब इस शोर में एक ही प्रसंग था। स्त्रियों और पुरुषों में एक ही चर्चा थी। अनेक अवसरों पर अनेक कारणों से आग लग जाने, आग बुझाने या आग से घिरे लोगों को साहस से बचाने की कहानियाँ और सोमा के साहस की प्रशंसा। कैसे वह जंगले के बाहर लटक कूद पड़ी। नीचे पलंग पर गिरते समय उसकी साड़ी का आंचल कैसे ऊपर उठ गया। जंगले से बाहर उसने पहले दाहिना पांव किया या बांया ? उसके यों कूद पड़ने से प्रौढ़ महिलाओं और युवतियों के हृदय कैसे धड़कने लगे ? और कैसे उन्होंने भय से आँखें मूंद लीं।

सोमा जलसे भीगे अपने केशों को माथे से पीछे हटा, लथपथ कपड़े सम्भाले, पीड़ा और दहशत से काँपती लड़की के माथे पर हाथ फेर कर सान्त्वना दे रही थी। चारों ओर से अपनी प्रशंसा की बौछार मुँह पर पड़ती देख संकोच और लज्जा से उसने गर्दन झुकाली।

सोमा की इतनी प्रशंसा सुन मिसेज़ गुर्टू ने गर्दन ऊँची कर कहा—'इतनी अच्छी लड़की है बेचारी। मुसीबत में थी। इसका आदमी हमारे यहाँ मुंशी है। मदद के लिये ही साहब ने रख लिया। बड़ा मुंशी तो वैसे दूसरा है। बेचारी मेरे यहाँ आई। साहब से मैंने कहा—ग़रीब लोग हैं। इस ज़माने में तीस-पैंतीस रुपये में होता क्या है? ग़रीब पढ़ी लिखी भी है। स्कूल में ही काम दिलादो। मेरे यहाँ तो बेचारी आती ही रहती है।'

मिसेज़ गुर्टू की इस प्रशंसा से प्रौढ़ महिलाओं और युवतियों को संतोष न हुआ। उनकी बात समाप्त होते ही फिर सोमा के साहस, उसके गाने के मिठास की चर्चा होने लगी। छोटी-छोटी लड़कियाँ उसके बिल्कुल समीप आ उसकी गोद में हाथ रख, उसके मुख की ओर घूरने लगीं। जवान लड़कियाँ उसकी साड़ी के कपड़े और किनारे को हाथ से टटोल कहने लगीं, कितनी अच्छी साड़ी है। ऐसी कहाँ मिलेगी? कुसुम की सहेली तारा ने सोमा के कान में पहरे सीप के टॉप्स की तारीफ़ कर पूछा—'भैनजी यह कहाँ से लिये? बड़े अच्छे हैं सचमुच।'

सोमा के लिये वहाँ और बैठना कठिन हो गया। मुँह पर की जाने वाली प्रशंसा से उसे झेंप आ रही थी। जंगले से पलंग पर कूदते समय पाँव में आ गई मोच की पीड़ा उसे व्याकुल कर रही थी। उस पीड़ा की चर्चा उसने न की थी परन्तु कष्ट तो था ही।

अपनी लथपथ साड़ी की ओर संकेत कर सोमा ने कुसुम की माँ को सम्बोधन किया—'बहिनजी, कोई दूसरी धोती हो तो बदल डालूँ। फिर पहुँचा दूँगी।'

रामप्यारी अपनी भूल से लज्जित हो बोलीं—'हाय-हाय, धोती क्या तुमसे अच्छी है। मैं बलिहार जाऊँ। धोतियों की क्या कमी है। हाय, मैं मर जाऊँ मुझे ख़्याल ही नहीं रहा। चल बल्ली चल, ऊपर चल। आलमारी खोल दूँ। पसन्द की साड़ी निकाल ले।' वे उठीं और सोमा की पीठ पर हाथ रख लिवा लेगईं। अपनी प्रशंसा की झेंप से बचने के लिये सोमा अपने चुटियाए पाँव की लँगड़ाहट छिपाती कुसुम की माँ के साथ ऊपर चली गई।

नीले किनारे की एक सादी सफ़ेद साड़ी बदल सोमा ने कुसुम की माँ से अपना पाँव बाँध लेने के लिये कपड़े का एक टुकड़ा माँगा। सोमा की चोट का हाल जान कुसुम की माँ का कलेजा उमड़ आया। उसे वहीं बैठा, चोट पर लगाने के लिये वे आम्बा हल्दी और सज्जी मिला कूटने लगीं। नीचे भीड़ में जा तमाशा बनने की अपेक्षा सोमा अपना पाँव दोनों हाथों में सम्भाले ऊपर ही बैठी रही।

कुसुम की माँ के साथ सोमा के ऊपर चले जाने पर भी उसकी प्रशंसा का बवण्डर कम न हुआ। अब लड़कियाँ झगड़ रहीं थीं:—सोमा जंगले से लटक कर नहीं कूदी। उसने जंगले की पटिया पर पैर रख छलांग लगाई थी। दूसरी ने कहा:—पक्का गाना वह प्रोफ़ेसर साठे से भी अच्छा गाती है। बहस होने लगी:—छलाँग लगाते समय उसे सब से पहले किसने देखा?

पान का नया बीड़ा दाँये गाल में दबा मिसेज़ गुट्टू ने कहा—'ठोकरें खा रही थी। साहब से कह कर मैंने जगह दिलवादी। यों कोई पूछता भी नहीं। अपना तो यह है कि जिस किसी का भला हो जाय....'

इतने पर भी सोमा के साहस, गाने और मीठे गले का चर्चा होता ही रहा। बहस थी, सब से पहले उसे अपने घर कौन बुलायें? लगातार वही प्रसंग चलता रहने से खीझ, मिसेज़ गुट्टू ने वितृष्णा से होंठ बिचका

कर कहा—'अरे भाई इतना साहस न होता तो भांवर लिये पति को छोड़ दूसरे के साथ यों आ बैठती..........और क्या ?'

मिसेज़ गुर्टू की बात से सन्नाटा सा छा गया। रामप्यारी की रिश्ते की जिठानी गुरांदेई ने झुर्रियों के जाल से भरी अपनी ठोड़ी को अँगूठे और तर्जनी उंगली से दबा, झिमझिमी आँखों को झपक पूछा—'क्या ?'

मिसेज़ गुर्टू ने फैले हुये हाथ से सामने की हवा को दाँये से बाँये चीरते हुये कहा—'नहीं तो क्या !....सारे दिल्ली शहर में धूम मच गई। कचहरियों तक मामले चले गये। हाथ का पैंतरा बांई ओर लौटाते हुये उन्होंने कहा—'बैरिस्टर दनूरिया हमारे साहब के दोस्त हैं। उन्होंने बचा दिया। नहीं तो दोनों को जेल हो जाती। यह सब हौसले ही तो हैं। बुड्ढे को छोड़ घर से भाग निकली। दनूरिया साहब ने बड़ी मुश्किल से साहब के पास लाहौर भिजवा दिया; नहीं क़त्ल हो जाते। दनूरिया साहब के कहने से आर्यों ने समाज में ब्याह करा दिया....और कहीं धर्म बिगाड़ती फिरे !....यहाँ भूखों मर जाते। साहब ने प्रतापचन्द को अपने यहाँ रख लिया और मैंने इसे इतना कह कर स्कूल में जगह दिलाई.......।'

गुरांदेई ने दोनों हाथ मल कर कहा—'यह रामप्यारी जो न करे सो थोड़ा....।' गंगो गुरांदेई की ही आयू की ही थी। दोनों हाथ दोनों गालों पर रख उसने कहा—'सतनाम-सतनाम और सब को उसके साथ बैठाकर खिला भी दिया।' क्रोध से उस के होंठ फड़कने लगे। अनेक वर्ष तक सबेरे कड़ी सर्दी में उठ, पीतल का छोटा कमण्डल ले, रावी स्नान करने जाना सब विफल हो गया। क्रोध में उसने कहा—'कहाँ है रामप्यारी, उसके सिर में आग लगे। गुरांदेई उठ खड़ी हुई और परेशानी से पुकारा—'कहाँ है मेरा काला लहंगा ? सामने खूंटी पर तो लटकाया था ? हाय-हाय, किसने गिरा दिया ? जाने कैसे-कैसे पाँव पड़े होंगे सब के ?'

गुरांदेई की लड़की बिशनी की ससुराल शहर में ही थी। वह भी बुलावे में आई थी। उसने यह कहानी सुनी तो अपने छोटे लड़के को बैठक

की ओर धकेल कर कहा—'जा अपने भाइय्ये ( बाप ) को जल्दी बुला।'

कुसुम की सहेली तारा झपटती हुई ऊपर गई। रामप्यारी हल्दी और सज्जी पीस कर कटोरे में उँगलियाँ पोंछ रही थीं। उसके समीप बैठ तारा ने कान में सब बात कहदी। रामप्यारी पाँव पर बोझ दिये बैठी थीं। यह बात सुन शरीर का बोझ फर्श पर आ टिका। हल्दी का कटोरा हाथ से छूट गया। माथा ठोक पुकार उठीं—'हाय राम जी! हल्दी भरे हाथ से माथे और साड़ी के आंचल पर छाप लगगई और रेशमी साड़ी छिंटा गई। बड़ी कठिनता से वह ज़ीना उतरी।

नीचे खलबली मच गई थी। प्रौढ़ स्त्रियाँ अपने दुपट्टे और काले लहँगे ढूँड-ढूँड तुरंत लौट जाने की तैयारी कर रही थीं। युवा स्त्रियाँ अपने नन्हें-नन्हें बच्चों पर झुंजला रही थीं। मर्द अपनी उपेक्षा से खिन्न हो पूछ रहे थे—'हुआ क्या?'

पानों का थाल उलट वे पैरों तले कुचले जा रहे थे। कालीन और जाजम ख़राब हो गये। यह सब लाला रामदास को दिखाई न दे रहा था। असहाय अवस्था में अपने बढ़े हुये पेट पर हाथ रखे वे असमय जल्दी में भागते जाते मेहमानों की ओर देख रहे थे और आशंका से कुछ पूछ भी न पाते।

शेष रह गई औरतों और लड़कियों में चर्चा अब भी सोमा का ही चल रहा था। तारा होठों पर हाथ रखे कह रही थी—'मैं मर गई, देख तो हौसला, कूद पड़ी, यह भी नहीं सोचा कि कपड़े उड़ने लगें तो........पेटीकोट दीखने लगा!'

बिशनी ने कहा—'आग लगे ऐसे हौसले में, मर्दों से बढ़ गई! आँगन से ज़ीना चढ़ कर आई तो सिर और बदन पर साड़ी कहाँ थी? सारे मर्द देख रहे थे। बाबा, हमसे ऐसा कभी नहीं हो सकता, चाहे मर जांय।'

गोपाली ने उंगली की नोंक गाल पर रख कर कहा—'हाय-हाय मुझे तो मर्दों से बड़ा डर लगता है।' सत्तो ने कलेजे पर हाथ रख दावा किया, उसे तो और भी अधिक डर लगता है।

नीचे जा अपनी प्रशंसा सुनने के संकोच में फंसने की अपेक्षा सोमा ने सोचा, वह ऊपर अकेली ही भली। कुसुम की माँ उसके पैर पर बांधने के लिये हल्दी-सज्जी पीसने और कपड़ा लाने गईं थीं। दस मिनिट, बीस मिनिट-आधे घंटे के क़रीब गुज़र गया। पांव में दरद बढ़ रहा था। सोमा परेशान होने लगी परन्तु कुसुम की माँ न लौटीं। सोमा सोच रही थी, हो क्या गया?

पन्द्रह मिनिट और भी गुज़र गये। कोई उसकी सुध लेने न आया। नीचे से स्त्रियों के ऊँचे स्वर में बोलने का शोर अधिक आ रहा था। सोमा सोच रही थी, उसे वहाँ अकेली बैठे इतनी देर हो गई किसी को उसकी चिन्ता नहीं। इससे तो अच्छा था, उसके लिये कोई सवारी ही मंगा देतीं। वह घर जा चोट को सेंकती और आराम से लेटती। उसी समय कम उम्र के नौकर-मुराद्दू ने खबर दी—'बीबी जी, नीचे टाँगा खड़ा है।

सोमा और भी विस्मित रह गई। उसके लिये सवारी आगई थी। इसका मतलब था, चली जाये! दीवार का सहारा ले वह बड़ी कठिनता से ज़ीना उतरी। नीचे महफ़िल उजड़ चुकी थी। जो स्त्रियां शेष थीं उन्होंने उसे देख पीठ फेर ली, जैसे पहचानती नहीं।

अभी तक सोमा अपनी प्रशंसा से सकुचा रही थी। इस उपेक्षा से दिल बैठने लगा परन्तु समझ कुछ न आता था। मकान की कुर्सी की सीढ़ियाँ उतर वह टांगे की ओर बढ़ रही थी। उस समय पीठ पीछे खिड़की से मिसेज़ गुर्टू का अस्पष्ट परन्तु तीव्र स्वर सुनाई दिया—'तो क्या मैं अपनी खुशी से उसे ले आई; तुम्हीं ने तो सौबार कहा था....।'

सोमा की आँखों में आँसू छलक आये परन्तु बह न सके........ अभी तो उसके साहस की इतनी प्रशंसा हो रही थी!

९

## होली नहीं खेलता

बैजल ने कहा—'मैं होली नहीं खेलता।'

पूछा—'क्यों नहीं खेलता ?'

उसने उत्तर दिया—'बस, नहीं खेलता।'

बात यह थी :—

मि० कपूर बैंक में अकाउण्टेण्ट हैं। दिन भर बैंक के खातों से सिर मार थके हुये घर लौटने पर इच्छा होती, बैंक की बातें एक-दम भूल जायँ। नाश्ता करते समय वे रेडियो लगा देते। कुछ ही दिन में मशीन के उस कर्कश स्वर से भी दिल ऊबने लगा। मिसेज़ ज्योत्स्ना कपूर से वे कुछ गाकर सुनाने को कहते। उन्हें नई तरज़ें, फड़कते हुये गीत और गाने सिखाने के लिये सप्ताह में एक-दो बेर सिनेमा भी अवश्य जाते परन्तु दिन भर के थके दिमाग़ को सिनेमा में नींद आ जाती। ज्योत्स्ना का गला अच्छा है। गाने का शौक भी, परन्तु कुछ उत्साह से न गा पाती। एक ही आदमी के लिये रोज़ गाना और वह भी ऐसा आदमी जो स्वयम् कभी न गाये; बल्कि मुँह बाये गाने वाले के मुँह की ओर घूरता रहे।

मि० कपूर को सुख मिलता है संगति में, घुल-मिलकर बातचीत

करने में। ज्योत्स्ना जैसी सुशिक्षित और सुस्वरूप स्त्री पाने का उन्हें गर्व है। वे चाहते ज्योत्स्ना गाना सीखे और स्वतंत्रता से समाज में मिले जुले। मर्दानी बैठक और ज़नाना उनके यहाँ दो अलग-अलग चीज़ें नहीं! मिलने जुलने वालों का परिचय वे स्त्री से भी कराते हैं। गोष्ठी और महफ़िल उनके यहाँ प्रायः लगी ही रहती है।

मि० कपूर को एक दिन बैंक में एक विचित्र व्यक्ति से वास्ता पड़ गया। प्रो० बैजल ने अपने सेविंग बैंक के हिसाब से कुछ रुपया निकलवाने के लिये एक चेक भेजा। कॉलेज का चपरासी चेक लौटा लाया।

प्रोफ़ेसर साहब बिगड़ते हुये स्वयम् बैंक पहुँचे। वहाँ उन्हें अकाउण्टेण्ट मि० कपूर के सामने पेश किया गया। चेक का रुपया न मिलने की वजह उन्हें बताई गई कि उनके हस्ताक्षर में कुछ अन्तर है।

उत्तर में प्रो० बैजल ने प्रश्न किया, 'एक बात बताइये, तीन बरस से आपके बैंक में मेरा हिसाब है। रुपया निकलवाने की कभी ज़रूरत नहीं पड़ी। इस बीच में यदि मेरे हस्ताक्षर में कुछ अन्तर आ जाय तो आश्चर्य की बात क्या? क्या यह ऐसा अपराध है कि आप मेरा रुपया तो जमा करते जायँ और लौटाने से इन्कार कर दें। एक बात और अर्ज़ करूँ; यदि आपको मेरी तरह लगातार तीन बरस तक अपने गाँव से दूर रहना पड़े और तीन बरस बाद घर लौटने पर आपके नौकर आपके किसी पुराने फ़ोटो से आपका चेहरा मिला कर कहें कि आपकी शक्ल में कुछ अन्तर आ गया है और आपको अपनी स्त्री के पास न जाने दें तो आप क्या करेंगे?'

दलील मि० कपूर को पसन्द आई। बातचीत में मालूम हुआ कि बैजल कॉलेज में दर्शन का प्रोफ़ेसर है आलमबाग़ में उनके मकान से कुछ ही दूरी पर रहता है। चेक का रुपया तो मिल ही गया, इसके साथ ही कष्ट के लिए क्षमा माँग कपूर साहब ने बैजल को संध्या

समय सिनेमा साथ चलने का निमंत्रण भी दे दिया। वहाँ मिसेज़ कपूर से परिचय हुआ।

×                ×                ×                ×

कपूर साहब ने पूछा—'कहिये मिस्टर बैजल, फिल्म कैसी पसन्द आ रही है?'

'कुछ खास नहीं।'—बैजल ने उत्तर दिया—'सिनेमा में जहाँ देखिये, स्त्रियाँ प्रेम करती हैं केवल सुन्दर पुरुषों से, जिन्हें गाना आता हो। कुरूप पुरुष के लिये केवल निराशा ही रह जाती है। इस बात से मुझे कुछ उत्साह नहीं होता।'

इस दर्द भरे परिहास से मि० कपूर की तोंद गुदगुदा गई। उन्हों-ने दूसरी ओर बैठी ज्योत्स्ना को बैजल की राय सुना दी। मुस्करा कर ज्योत्स्ना ने ओंठ दबा लिये और उसके साथ ही हृदय में अनुभव हुई एक दबी हुई-सी सहानुभूति। बैजल का गहरा साँवला, मुँहासे के दागों से भरा चेहरा उसकी नज़रों के सामने फिर गया।

बैजल समझ गया कि अपने दुर्भाग्य का संकेत करती हुई उसकी वह बात मिसेज़ कपूर के कानों तक पहुँच गई है। नीरस फिल्म के पर्दे पर कुछ क्षण के लिये उसे दिखाई दे गया ज्योत्स्ना का साफ़ गेहुँए रंग का चेहरा, उसकी बड़ी-बड़ी आँखें, रस भरी नारंगी की फाँक से ओंठ और उसकी बात से चेहरे पर फिर जाने वाली परिहास की हल्की छाया, बढ़िया साड़ी में लिपटा उसका छरहरा बदन और उसकी छाया में उसका अपना अरुचिकर रूप! यह उसकी कल्पना के साथी बन गये। उसे याद आ जाता, गाँव में अपनी स्त्री का मुख! पहिले दिन से ही जिसके चेहरे पर उसने अपने नौकर के भाव की छाया देखी है। वह सदा केवल आज्ञा पालन के लिये ही तत्पर रहती है। उसका अपना अस्तित्व कुछ भी नहीं।

बैजल की बातें कुछ चुभती हुई और चटपटी होती हैं। समाज

की प्रत्येक धारणा और प्रथा का विरोध और मज़ाक करने की कसम उसने खा ली है। कपूर कहते 'वह स्थूल जगत् में नहीं, बल्कि किताबों की दुनिया में रहता है।'

कपूर साहब के यहाँ बैजल का आना-जाना साधारण बात हो गई। सिनेमा में भी अब कपूर नहीं ज्योत्स्ना बीच में बैठती। 'पाप का फल' फिल्म में सदाचार का उपदेश देते समय कहलाया गया—'स्त्री पाप और पतन का मूल है।' ज्योत्स्ना ने पूछा—'क्यों बैजल साहब, क्या यह बात ठीक है?'

'यदि पाप और पतन अकेले पुरुष का ही होता हो तो बात ठीक हो सकती है।'—बैजल ने उत्तर दिया।

बैजल का ढंग कुछ सनकी-सा है। समाज की व्यवस्था का वह आमूल विरोध करता है परन्तु जब ज्योत्स्ना स्त्रियों की स्वतंत्रता और पुरुषों की समानता की बात कहती, वह चिढ़ जाता। वह कहता—'जब तक स्त्रियाँ पुरुषों के कंधे का बोझ हैं, उनकी कमाई खाती हैं, उन्हें पुरुषों की ज़रूरत पूरी करने की चीज़ बनकर रहना होगा। इसमें गिड़गिड़ाने और मिनमिनाने की कोई गुँजाइश नहीं। स्वतंत्रता किस बात की?' वह कहता—'मेरी स्त्री घर पर बैठी है। मैं पूर्ण स्वतंत्रता देता हूँ। क्यों वह मेरे गले में चक्की के पाट की तरह पड़ी है?'

ऐसी बातों से ज्योत्स्ना को स्त्री-जाति का अपमान मालूम होता। जवाब में वह कहती—'यह आपका काम है कि आप उन्हें पढ़ाइये-लिखाइये, उन्हें योग्य बनाइये!' तब बैजल चिढ़ जाता 'जी हाँ, मेरा काम है कि जो व्यक्ति मेरी हुकूमत छीन कर मेरी बराबरी करना चाहे, मैं उसकी सहायता करूँ? अपने पैर कुल्हाड़ी मारूँ? मेरा मकान शिकारपुर में नहीं है।'

ज्योत्स्ना को इस बात का गर्व था कि वह स्वतंत्र है, पति के समान ही उसका अधिकार है परन्तु इससे अधिक गर्व था सदा-

चारिणी और साध्वी होने का। स्त्रियों पर अनुचित दबाव रखने के अति-रिक्त उसे पुरुषों के प्रति यह भी शिकायत थी कि वे प्रकृति से लम्पट होते हैं। वह ताँगे पर जब अकेली बाजार जाती है, कोई न कोई घूर-घूर कर उसकी ओर देखने लगता हैं। इस विषय पर अनेक वेर बहस और नोक-झोंक हुई। ज्योत्स्ना की निस्संकोच आत्मीयता मे जो साहस बैजल के मन में होता, वह इस चर्चा से काफ़ूर हो जाता।

× × ×

कपूर साहब की बैठक के कोने में दीवारगिरी पर ज्योत्स्ना का का एक छोटा-सा फोटो फ्रेम में मढ़ा रखा था। बैठक में कभी अकेले बैठे रहने पर बैजल प्रायः इस फोटो की ओर देखा करता। एक दिन छोटे लड़के नलू की शरारत मे फोटो फ़र्श पर आ गिरा और फ्रेम टूट गया। कई दिन वेपरवाही में बीत गये। एक दिन चिढ़ कर ज्योत्स्ना ने कहा—'और सब काम होसकते हैं, इस फोटो का फ्रेम नहीं बन सकता।'

फोटो जेब में रखते हुए बैजल ने कहा—'फ्रेम बन जायगा!'

फोटो लौट कर बैठक में नहीं आया। एक दिन बैजल के यहाँ चाय पीकर जब कपूर और ज्योत्स्ना भीतर के कमरे में बैठे गप्प लड़ा रहे थे, देखा कि वह फोटो बैजल के पलंग के सिरहाने की मेज़ पर ताम्बे के एक नक्क़ाशीदार भारी फ्रेम में रखा है। कुछ दिन पहले तक उस फ्रेम में किसी एक समाचार-पत्र से कटा स्वयं बैजल का चित्र था जो उसके लेख के साथ छपा था।

ज्योत्स्ना ने पूछा—'वाह, फोटो में फ्रेम कहाँ लगवाया?'

'यह क्या फ्रेम नहीं है?'—बैजल ने उत्तर दिया।

'पर वह पहले वाला चित्र कहाँ गया?'—ज्योत्स्ना मेज़ पर पड़ी पुस्तकों में उसे टटोलने लगी। किसी एक पुस्तक में वह मिल भी गया। इस चित्र को अपने बटुये में रखते हुए उसने कहा—'यह बदले में!'

ज्योत्स्ना के वह चित्र ले जाने के बाद से बैजल के पैर मानों

पृथ्वी से कई फुट ऊँचे उठ गये। उसके कई दिन कल्पना के मधुर विहार में बीते। रात में अपने तकिये को ज्योत्स्ना समझ वह मुस्कराता हुआ मीठी नींद सो जाता। इस पर भी जब कभी वे एक साथ टाँगे पर बैठ कर कहीं जाते, दोनों के बीच स्वेज़ नहर का अन्तर बना रहता, जिसमें से सदाचार की धारा सुरक्षित रूप से बहती रहती।

× × ×

मुहर्रम की छुट्टी के कारण बैंक और कॉलेज दोनों ही बन्द थे। छुट्टी से पहली रात बैजल कपूर के यहाँ खाना खाता और रात गये तक बैठक जमती। संध्या को बैजल कपूर के यहाँ पहुँचा मिस्टर और मिसेज़ दोनों ही गैरहाज़िर थे। बैजल बैठक में बैठ एक अंग्रेज़ी दूकान का सूचीपत्र देखने लगा। कुछ देर में टाँगा आया। टाँगे से ज्योत्स्ना झपटती हुई उतरी। घर पर हाज़िर न रहने की माफ़ी माँग उसने बताया—'रास्ते में बैंक के मैनेजर साहब मिल गये, उन्होंने इन्हें रोक लिया। अभी आते होंगे।'—सूचीपत्र बैजल के हाथ से ले उसने पूछा—'आप यह क्या देख रहे हैं ?'

'कुछ नहीं'—बैजल ने उत्तर दिया—'बहुत-सी चीज़ें ऐसी हैं जिन्हें खरीदने या पा सकने का सुभीता नहीं उनको तस्वीर देख या उनकी याद से ही मन बहला लेना होता है।'

भीतर ले जा ज्योत्स्ना ने बैजल को छिड़काव कर और गमले धो ठण्डी की जगह पर पड़ी कुर्सी पर बैठाया। बैजल ने पूछा—'आप लोग कहाँ गये थे ?'

सामने की कुर्सी की पीठ का सहारा ले खड़ी हो ज्योत्स्ना ने उत्तर दिया—'इमामबाड़े में मुहर्रम की रोशनी होती है न ; बेचारे सदा पास भेज देते हैं। यह कभी जाते ही नहीं। आज वहीं गये थे। सोचा था आपको साथ लेकर जायेंगे परन्तु डाक्टर रशीद अपनी गाड़ी में दूसरी ही राह ले गये।'

'आप खड़ी ही रहेंगी ?'—बैजल ने पूछा।

'नहीं तो'—उत्तर दे ज्योत्स्ना सामने की कुर्सी पर बैठ गई। जोगिया रंग की साड़ी के ज़रीदार किनारे को सहलाते हुए उसने पूछा—'यह साड़ी आपको कैसी पसन्द आई !'

'आपका मतलब है, किनारा'—हाथ के अँगूठे को दाँत से काटते हुए बैजल ने पूछा—अच्छा है।'

'मैं कह रही हूँ साड़ी।'—ज्योत्स्ना ने खीभ दिखाकर कहा।

—'यों अलग से साड़ी का भी कुछ मूल्य मेरी दृष्टि में नहीं।'

'आप तो सदा टेढ़ी बात कहते हैं'—ज्योत्स्ना ने कहा और कुर्सी की पीठ से पीठ लगा नई बात आरम्भ करने के लिये उसने पूछा—'अच्छा, यह बताइये, पुरुषों को यों घूरने से क्या मिलता है ? इमामबाड़े से अमीनाबाद होकर हम टाँगे पर आ रहे थे। बैंक के मैनेजर ने इन्हें रोक लिया। टाँगे में मैं अकेली रह गई। बस, एक जेण्टलमैन साहब ने साइकिल पीछे लगा ली। नाकेहिंडोले के चौराहे पर दोनों ओर से मोटरें आ गईं। बाबू साहब जाकर एक दूकान के तख़्ते से टकराये। पतलून फट गई, खूब मज़ा आया ! मैं हैरान हूँ, देखने से पुरुषों को मिलता क्या है ?'

हाथ के अँगूठे को दाँत से काटते हुए बैजल ने उत्तर दिया—'आप रोशनी देखने गई थीं न ! उसमें क्या मिलता है ? आपको इमामबाड़े की रोशनी अच्छी लगती है। किसी को आपके चेहरे पर ही रोशनी दिखाई देती है।'

लज्जा से मुँदती हुई आँखों से बैजल को धमका कर ज्योत्स्ना ने कहा—'बड़े वो हैं आप ?'

'वो कौन ?'—सतर्क स्वर में बैजल ने पूछा—'टाँगे के पीछे साइकिल लगा कर चोट खाने वाला या इमामबाड़े की रोशनी पर रीझने वाला ?—'बेजान खिलौनों पर रीझने की मेरी उम्र नहीं और यदि मैं

किसी के पीछे-पीछे जाऊँ और वह मेरे चोट खाने और मेरी पतलून फटने से खुश हो तो मैं समझूँगा, ऐसे अभिमानी व्यक्ति से बात नहीं करनी चाहिए।'

अभिमान के अभियोग से सतर्क हो ज्योत्स्ना ने पूछा—'अभिमान की इसमें क्या बात?'

'पुरुषों को आकर्षित कर सकने की शक्ति पर ही स्त्रियों का जीवन निर्भर करता है। पुरुषों के आकर्षित होजाने की निर्बलता पर ही स्त्रियाँ उन्हें लांछित करती हैं।' फ़र्श की ओर दृष्टि किये बैजल ने उत्तर दिया और फिर ज्योत्स्ना की आँखों में आँखें डाल बोला—'फ़र्ज़ कीजिये, इमामबाड़े वाले खूब बढ़िया रंग-बिरंगी रोशनी करें और फिर रोशनी देखने आने वालों को गालियाँ और धक्के दें?'

'क्या मतलब?'—भवों में बल देते हुए ज्योत्स्ना ने पूछा।

'मतलब न समझने का भी अभिमान होता है।'—हिचकते हुए धीमे स्वर में बैजल ने उत्तर दिया।

उस अस्पष्ट उत्तर का अर्थ बहुत गहराई तक समझ, गुलाबी होती हुई आँखों को नीचे झुका ज्योत्स्ना ने कहा—'हम तो ऐसी जगह कभी न जायँ! हमें तो उन्होंने स्वयं पास भेजे हैं.......'

उसकी बात काट कर बैजल बोला—'और आप पास देना पसन्द नहीं करतीं।'

इस विद्रूप से अनुभव होने वाली सिहरन को छिपा जाने के लिये, साड़ी के आँचल को खींच ज्योत्स्ना ने अपनी आँखें गमलों की ओर घुमा दीं। बैजल के संकेत की पहुँच से एक सीढ़ी और ऊपर चढ़ जाने के लिये उसने कहा—'आपकी तो बातों का मतलब समझना ही मुश्किल है!'

'क्या कुछ अनुचित बात कही मैंने?'—बैजल ने पूछा।

'यह मैंने कब कहा परन्तु पुरुषों का स्त्रियों को तंग करना क्या उचित है ?'—दृष्टि सामने कर ज्योत्स्ना ने प्रश्न किया।

न समझने की जो मजबूत दीवार ज्योत्स्ना अपने चारों ओर खड़ी करती जा रही थी उस पर आघात करने के लिये अपना सम्पूर्ण साहस एकत्र कर बैजल ने उत्तर दिया—'सड़क किनारे के वृक्षों को तो पुरुष तंग नहीं करते, न वे बिजली के खम्भों से चिपटते फिरते हैं। पुरुषों को आकर्षित करने का सब यत्न कर, तंग करने का इलज़ाम उन पर लगाना, कितना बड़ा अभिमान और अन्याय है ?'—ज्योत्स्ना इस बात को समझने से अवश्य इन्कार कर जायगी, यह सोच व्याकुल हो, बैजल बोला—'यह तो आपको मानना ही पड़ेगा कि स्त्री-पुरुष के परस्पर आकर्षण में स्त्री का काम चाहने योग्य वस्तु बन कर पुरुष को निमंत्रण देना है और पुरुष का काम है उसे पाने के लिये पीछे-पीछे भागना !'

इस स्पष्ट बात से ज्योत्स्ना की त्वचा चिनचिना उठी। स्त्री होने के नाते पुरुष की व्याकुलता का रसास्वादन और अधिक करने के लिये उसने कहा—'परन्तु स्त्रियाँ तो पुरुष को तंग नहीं करतीं।'

अपनी कुर्सी पर आगे झुक कर बैजल ने पूछा—'क्या स्त्रियाँ पुरुषों की ओर आकर्षित नहीं होतीं ?'

गम्भीर तटस्थता के स्वर में ज्योत्स्ना ने कहा—'स्त्रियाँ पुरुषों के पीछे कहाँ भागती हैं ?'

बैजल हँस पड़ा—'क्षमा कीजिये' स्त्रियों का तो दावा है कि जैसा प्रेम और प्रेम में बलिदान स्त्रियाँ करती हैं, पुरुष कभी नहीं कर सकते।'

'हाँ, तो बिल्कुल ठीक है।'—ज्योत्स्ना ने दावे को स्वीकार किया।

प्रकट मुस्कराहट में ओंठ दबाते हुए बैजल ने पूछा—'प्रेम करती हैं, प्रेम में बलिदान करती हैं परन्तु आकर्षित नहीं होतीं। बिना आकर्षण के प्रेम कैसे होता है ?'

अपनी झेंप छिपाने के लिये ज्योत्सना ने तुरन्त जवाब दिया—'स्त्रियाँ

पुरुषों की तरह प्रेम करने के लिये उधार खाये नहीं बैठी रहतीं। उन्हें जहाँ प्रेम करना चाहिए, वहीं प्रेम करती हैं।'

कहने को ज्योत्स्ना कह गई परन्तु ध्यान आ गया बैजल की भावुकता का ; कहीं वह इस बात को व्यक्तिगत रूप में समझ कर रूठ न जाय। आत्मीयता भरी आशंकित दृष्टि से उसकी ओर देखा। उस दृष्टि की उपेक्षा कर बैजल ने तीखे विद्रूप से उत्तर दिया—'ज़रूर, स्त्रियों के पास प्रेम कहाँ करना चाहिए और कहाँ नहीं, इस बात की लिस्ट भगवान् के यहाँ से आ जाती होगी और पुरुषों के लिये ऐसा कोई सन्देश आ नहीं पाता। यह कहिये, अपनी दासता के कारण स्त्रियों को जहाँ ढकेल दिया जाता है, वे प्रेम का नाटक करने लगती हैं। पुरुषों में थोड़ी बहुत स्वतंत्रता या निर्भयता है। इसलिये वे अपनी इच्छा से प्रेम करने की चेष्टा कर लम्पट बन जाते हैं। क्यों साहब, प्रेम आज्ञा से किया जाता है या इच्छा से ? आज्ञा से किये जाने वाले प्रेम को प्रेम न कहकर स्वामि-भक्ति कहना ही ठीक होगा। मेरी राय में मजबूर होकर आयु भर प्रेम करने से अपनी इच्छा से क्षण भर प्रेम कर लेना कहीं अधिक अच्छा है !....'—वह क्या कहता चला जा रहा है यह ध्यान आते ही वह चुप हो गया।

ज्योत्स्ना के चेहरे पर रक्त के वेग की उष्णता छा रही थी। न समझने की बात अब भी वह किस तरह कहे ? एक मधुर मूढ़ता में उसका सिर घूमता जा रहा था। उसी समय छोटा लड़का नन्नू दौड़ा आया। ज्योत्स्ना के घुटनों से लिपट ठुनकते हुए उसने शिकायत की—'माँ जी, हमें छिनेमा नी ले गये।'

बैजल के प्रबल आक्रमण से आश्रय पाने के लिये ज्योत्स्ना निस्सहाय की भाँति नन्नू से चिपट गई। पुत्र को हृदय से लगा लेने के लिये उसने उठा गोद में खड़ा कर लिया। गीली मिट्टी से सने बच्चे के जूतों से ज़रीदार साड़ी ख़राब हो जाने की भी सुध न रही।

बच्चे के गाल से गाल सटाकर उसने कहा—'छोटे-छोटे राजे बेटे कहीं छिनेमा जाते हैं।'

माँ के स्नेह उद्‌गार से छूटने के लिये छटपटाते हुए नन्नू ने कहा—'हाँ रज्जू भैया को चाचाजी छिनेमा ले जाते हैं।'

बैजल से आड़ बनाये रखने के लिये नन्नू को बाहों में समेटते हुये ज्योत्स्ना ने समझाया—'रज्जू भैया तो स्कूल जाते हैं। जब नन्नू बाबू स्कूल जायँगे तो चाचा जी सिनेमा भी ले जायँगे।' बैजल की ओर देखे बिना ही उसने पूछा—'क्यों बैजल साहब, आप नन्नू बाबू को भी सिनेमा ले जायँगे न?'

बैजल कोई उत्तर न दे सका। अपने असंतोष को वह केवल मौन रह कर ही प्रकट कर सकता था। शब्द उपयुक्त न होते। बैजल के सम्मुख आत्म-समर्पण के लिये व्याकुल मन को वश में करने के लिये नन्नू के छोटे-छोटे हाथों से आँखें मूँदते हुए ज्योत्स्ना ने कहा—'आप बैठिये, अभी आती हूँ।' वह भीतर चली गई।

बैजल को अनुभव हुआ, उसके भावों को पैर से रौंद देने के लिये ही ज्योत्स्ना उठी चली जा रही है। मुख से वह कुछ कह न सका। परन्तु इस चोट का प्रतिवाद न करना भी असह्य न था। नौकर को पुकार उसने कहा—'साहब को बोल देना, हम जाते हैं, बहुत इन्तज़ार किया!'

नौकर घर में बैजल की स्थिति जानता था। उसने विनय की 'साहब अभी आते होंगे बैठिये, खाना तैयार है।' उसे रुकते न देख नौकर ने फिर कहा—'बीबी जी अभी आती हैं....उन्हें कह दूँ आप जा रहे हैं।'

कपड़े बदल कर ज्योत्स्ना लौट आई। वह बैजल के प्रबल आघात को सहने के लिये, बैजल के अधिकार को स्वीकार कर मर्मान्तक

आघात के सुख में एक दफ़े अपने आपको खो देने के लिये तैयार होकर आई थी परन्तु वह चला जा चुका था।

ज्योत्सना जार्जेट की सफ़ेद साड़ी पहिन कर आई थी। वह जानती थी, सफ़ेद साड़ी बैजल को कितनी पसन्द है। उसके चले जाने की बात सुन पैरों-तले धरती खिसक गई। बैजल के मर्म-बेधी शब्द-बाणों से यह आघात कहीं अधिक प्रबल था। मुँह को आता हृदय सँभाल, बड़ी कठिनाई से आँसू रोक, वह नौकर से लड़ पड़ी—'तुमने क्यों जाने दिया?'—वह यह भी भूल गई कि नौकर हाथ थाम कर तो किसी को रोक नहीं सकता।

इसी समय बाहर मैनेजर की मोटर का परिचित स्वर सुनाई दिया। उतावले क़दम रखते हुए कपूर साहब भीतर आये। विस्मय से उन्होंने पूछा—'क्या बैजल नहीं आया?'

यह जानकर कि बैजल आया था और चला गया, कपूर साहब स्त्री पर बिगड़े बिना न रह सके। क्रोध में स्वर ऊँचा कर उन्होंने कहा—'आख़िर तुमको पहले भेज किस लिये दिया था? पन्द्रह मिनट तुम उसे रोक नहीं सकीं? किसी से दो बात कर सकने की तमीज़ तुमको नहीं।........उसे खाने पर बुलाया था। उसके नौकर ने खाना भी तो नहीं बनाया होगा। इतनी भी तो अक़्ल तुमको नहीं। कपड़े तुम दस मिनट ठहर कर ही बदल लेतीं........कौन प्रलय हो जाता?'

ज्योत्स्ना की आँखों और हृदय में उमड़ते बादल बरस पड़े। आँचल में मुँह लपेट वह पलंग पर जा लेटी और ज़ोर से रो उठी उसका मन चाह रहा था कि 'ये' उसे ख़ूब फटकारें और वह जी भर कर रो सके। इस रोने का कारण कपूर साहब के कठोर शब्द नहीं बैजल का रूठ कर चले जाना था और उसे नाराज़ कर देनेवाली उसकी अपनी अक्षमता। मन चाहता था, वह धूल में मिल जाय! पृथ्वी फट जाय और वह उसमें समा जाय! चिर दिन से इकट्ठी हुई

अतृप्त साध और मानसिक यंत्रणा उमड़-उमड़ कर निकल रही थी। नौकर से साइकिल निकलवा कपूर साहब पैर पटकते हुए बैंजल को मनाने चले गये और ज्योत्स्ना पड़ी रोती रही।

बैंजल घर पर मिला नहीं। लौट कर कपूर साहब और भी बिगड़े। कुछ देर बाद वे एक दफ़े और बैंजल के यहाँ जाने को तैयार हुए परन्तु विचार आया, जाने वह अभी लौटा है या नहीं ; शायद किसी होटल में चला गया है या किसी दोस्त के घर ; हो सकता है चिड़ियाघर की सूनी, अँधियारी सड़कों पर ही घूम रहा हो ! उस समय जाना व्यर्थ समझ कपूर चुप बैठ गये। ज्योत्स्ना निरन्तर रोती रही।

बड़ी रात गये कपूर साहब ने बहुत बेमन से भोजन किया। भोजन का बोझ पेट में पहुँच उनका क्रोध दब गया। उन्होंने ज्योत्स्ना को मनाना शुरू किया। शब्दों के असफल हो जाने पर दूसरे की उपाय शरण ली। पहले भी ऐसा हो चुका था। जिस सीमा पर पहुँच कर ज्योत्स्ना का मान समाप्त हो जाता था, आज वहाँ कपूर के ही प्रयत्नों की हार रही। ज्योत्स्ना का शरीर सभी संकेतों के लिये शिथिल और निश्चेष्ट बना रहा। वह सिसकियाँ लेती रही। क्रोध में ज्योत्स्ना को बहुत अधिक डाँट देने के लिये कपूर को पश्चात्ताप होने लगा। उन्होंने निश्चय किया, सुबह बहुत जल्दी उठ बैंजल को बुला लायेंगे। ज्योत्स्ना सोचती रही, वह क्या करे ? आयु भर घर के दूसरे कामों की भाँति मजबूरी में प्रेम भी किया था परन्तु यह आकर्षण स्वयम् ही उठ रहा था ?........ इस प्रेम को क्या वह रोक सकती है ?

बहुत विलम्ब से सोने के कारण सुबह कपूर साहब की नींद भी देर से खुली। सब तरह से जल्दी करने पर भी हजामत और कपड़े पहन बैंक की राह में बैंजल के यहाँ पहुँचे तो वह कालेज जा चुका था।

रोने से सूजी हुई आँखें गुलाबजल से धो, ज्योत्स्ना घर के अनेक

कामों में व्यस्त हो जाने की चेष्टा कर रही थी परन्तु हर बात, हर काम और हर स्थान में वैजल की नाराज़गी दिखाई देती। वह करे तो क्या ? प्रेम और आकर्षण की जो मीमांसा वैजल उसके सामने कर गया था, उसके शब्द निरन्तर कानों में गूँज निष्ठुरता, तिरस्कार और दासत्व का अभियोग लगा रहे थे। ज्योत्स्ना के लिये वह मनोविज्ञान का विश्लेषण नहीं, वैजल का व्याकुल आत्म-निवेदन था। और वह निरुपाय थी ; स्वीकार कर लेने में....और इनकार कर देने में भी। आयु भर कर्तव्य के तौर प्रेम करने के बाद अब प्रेम स्वयम् हृदय में उठ उसे भयभीत और व्याकुल कर रहा था।

चार दिन में कपूर साहब ने तीन बेर ज्योत्स्ना को लेकर और एक बेर अकेले वैजल के यहाँ चक्कर लगाये। संयोग से वैजल मिला नहीं। होली से पहली संध्या कपूर और ज्योत्स्ना बहुत देर तक उसके घर बैठे रहे। साढ़े ग्यारह बजे तक भी वैजल न लौटा। कपूर ने समझ लिया, सिनेमा के दूसरे खेल में चला गया है। घर लौटने के लिये उठते हुए उन्होंने कहा—'सिनेमा ही जाना था तो कमबख्त पास क्यों नहीं ले गया ?' पति के अज्ञान के प्रति अपनी निराशा प्रकट करने के लिये ज्योत्स्ना ने उत्तर दिया—'हाँ, यदि नाराज़गी का मूल्य दो-चार रुपये होता !'

घर लौटते समय ज्योत्स्ना को याद आ रही थी, कुछ दिन पहले की बात। होली के आनेवाले हुल्लड़ का चर्चा होने पर उसने आशंका से वैजल को सम्बोधन कर पूछा था—'क्या आप भी होली खेलते हैं ?' वैजल ने गहरी अर्थ पूर्ण निगाहों से उत्तर दिया था—'वाह ! मैं तो इसकी प्रतीक्षा कब से कर रहा हूँ। उस दिन तो सब कुसूर मुआफ़ होंगे।' ज्योत्स्ना को रोमांच हो आया था। सिर हिला और ओठ दबाकर उसने मुस्करा दिया था। आज इस याद से हृदय मुँह को आने लगा—'कल होली है। मुआफ़ी के अधिकार से अपराध करने की धौंस

देनेवाला कहाँ है ?'........दाँतों से ओंठ दबा ज्योत्सना ने उमड़ते हुये आँसुओं का घूँट भर लिया।

कपूर ने प्रतिज्ञा की, सुबह उठते ही बहुत-सा रंग ले बैजल के यहाँ जा, उसका मुँह लाल और हाथ-पैर नीले कर कान से पकड़ घर लिवा लायेंगे और अच्छी तरह उसकी ख़बर ली जायगी। जब सुबह नन्नू के 'ओली-ओली' चिल्लाने और रज्जू के बाल्टी पटकने के शब्द से कपूर की आँख खुली, पड़ोस के लोग रंग और पिचकारी ले आँगन में जमा थे। बैजल की याद सबसे पहले आई परन्तु आह्लाद के उस कोहराम में दब गई। पड़ोस के लोगों के बाद बैंक के लोग और उसके बाद डा० साहनी, वकील निगम और ला० रामप्रसाद आ गये। जाने कितनी दफ़े मिठाई आई और कितनी दफ़े पान-दान में चूना और कत्था समाप्त हुआ। एक बज गया और वे लोग बैजल के यहाँ न जा सके।

एक बजे के बाद रंग में सराबोर चोथड़े कपड़ों से बैजल के घर कैसे जाना होता ? नहा-धोकर टाँगा मँगा, वे लोग बैजल के यहाँ गये। रंग साथ ले लिया था। उसके घर पहुँच कर देखा, होली के पागलपन का कोई आभास नहीं। नौकर चादर ताने रसोई घर में सो रहा था। बैजल अपने सोने के कमरे में रात के धारीदार कपड़े पहिने, सड़क की खिड़की की ओर मुँह किये, सिगरेट पीता हुआ गा रहा था—

'इश्क में योंही बेसकूँ कटती हैं ज़िन्दगानियाँ !'........

कपूर ने रंग की पुड़िया खोलते हुये कहा—'वाह रे शैतान ! बीस दफ़े तुम्हारे यहाँ चक्कर लगाये और तुम होली के दिन भी न आ सके !' वह कुछ कह सके इससे पहले ही कपूर ने रंग उसके मुँह और बालों में भर दिया। ज्योत्स्ना देख रही थी, बैजल ने वह सारा दिन सिगरेट उड़ाते और इश्क की बेसकूनियों का रोना रोते बिताया है और

उसे याद आ रहा था, उसका होली के दिन मुआफ़ी के अधिकार से अपराध करने का अरमान !

'होली के दिन तो सब नाराज़गियाँ ख़त्म हो जाती हैं'—मुस्कराती हुई आँखों से आगे बढ़, मधुर अपराध की क्षमा जबरन ले, बैजल की सब बेसकूनियों को शान्त कर देने के लिये ज्योत्स्ना ने अपने हाथों उसके चेहरे पर गुलाल मल एक हल्की-सी चपत लगा दी।

बैजल ने भी मुस्कराने का यत्न करते हुये दोनों के चेहरों पर रंग मला और फिर इस बीच में आकस्मिक अड़चनें आ जाने के कारण उन के यहाँ न जा पाने सकने की सफ़ाई दी।

तीनों बातें कर रहे थे। ज्योत्स्ना देख रही थी, बैजल उसकी ओर से दृष्टि कतरा जाता है। बैजल की से इस नाराज़गी से उसका मन गुदगुदा उठता। वह मुस्करा रही थी, यह नाराज़गी अभी दूर हो जायगी। कपूर ने थककर एक सिगरेट सुलगाई और शरीर की त्वचा पर रंग की रगड़ से अनुभव होने वाली चिनचिनाहट से छुट्टी पाने के कहा—'नहायँगे ?'

नौकर ने बक्स से कमीज़, धोती और तौलिया निकाल दिया। हुकुम पा वह कपूर के यहाँ से बीबी जी के लिये साड़ी लेने चला गया।

कपूर के नहा चुकने की प्रतीक्षा में बैजल सिगरेट पीता हुआ कमरे में टहलने लगा। ज्योत्स्ना उसकी शेष नाराज़गी की ओर देख मुस्करा रही थी। समीप आ, उसके कंधे से माथा सटाते हुए आँखें उठा उसने पूछा—'कहिये वह कौन कुसूर करने का अरमान था ?........ इतनी नाराज़ी ?'

बिल्कुल भाव-शून्य चेहरे और स्वर से बैजल ने उत्तर दिया—'मैं समझा नहीं ?' बदले की इस चोट से ज्योत्स्ना गल गई। सिर बैजल के सीने से सटा, हाथों की अँगुलियों को तोड़ते हुए उसने द्रवित स्वर में कहा—'जाने दो नाराज़गी !........कहते जो थे, आज के दिन

सब कसूर मुआफ़ होते हैं....जीवन में एक क्षण से....सन्तोष....!' उसका गला रुँध गया। बैजल दशहरे के रावण की भाँति निश्चल था। अधमुँदी आँखों से कठोर दृष्टि ज्योत्स्ना के चेहरे पर डाल, उसने धीमे परन्तु रूखे स्वर में कहा—'सन्तोष अपनी ही वस्तु से होना चाहिये.... पराई चीज़ से नहीं।' ज्योत्स्ना का चेहरा लाल हो गया—'स्त्री, पुरुष की सम्पत्ति होती है?'—उसने घूर कर पूछा। 'होती है'—निश्चल रह कर बैजल ने उत्तर दिया—'पुरुषों को परस्पर एक दूसरे की सम्पत्ति के अधिकार की रक्षा करनी चाहिये!'

ज्योत्स्ना को जान पड़ा, सिर में चक्कर आ जाने से वह गिर पड़ेगी। जल्दी-जल्दी साँस लेती हुई वह पलँग पर बैठ गई। माथा उसने दीवार से टिका दिया। बैजल सिगरेट पीता हुआ बाहर बरामदे में टहलने लगा।

गुसलख़ाने से निकल कपूर ने पुकारा—'अरे कंघी कहाँ है?' और ज्योत्स्ना की ओर देखकर पूछा—'तुम्हारी साड़ी आ गई, नहा डालो!'

तीखे स्वर में ज्योत्स्ना ने उत्तर दिया,—'नहीं, टाँगा मँगाइये!'

विस्मय से कपूर ने पहले एक की ओर फिर दूसरे की ओर देखकर पूछा—'क्या फिर लड़ाई हो गई?'

फ़र्श की ओर देख ज्योत्स्ना ने क्रुद्ध स्वर में उत्तर दिया—'क्या मैं तुम्हारे दोस्तों की जूतियाँ खाने के लिये हूँ?'—रुलाई के आवेग के कारण मुँह को साड़ी के आँचल में लपेट वह फफक-फफक कर रोने लगी। कपूर ने परेशानी से बैजल की ओर देखा—'हुआ क्या?'

'मैंने कुछ नहीं कहा'—समाप्त सिगरेट फेंकते हुये उसने उत्तर दिया और गुसलखाने में जा किवाड़ बन्द कर लिये। नहाकर जब वह निकला, वे लोग जा चुके थे। ज्योत्स्ना के घर से आये साड़ी-ब्लाउज़ मेज़ पर पड़े थे। नौकर विस्मित और भयभीत भाव से एक ओर खड़ा था।

........तब से बैजल होली नहीं खेलता।

---

१०

## क़ानून

'रंगी को नारंगी कहें, बने दूध को खोया....' अन्तरद्रष्टा, भक्त कबीर मनुष्य की मति में अन्तरविरोध देखते ही थे। कभी-कभी हमारे शहरों की वैचित्र्यहीन, बोसीदा ज़िन्दगी में भी ऐसे अन्तरविरोध पैदा हो जाते हैं जिनकी उपेक्षा स्थूल दृष्टि भी नहीं कर सकती। उदाहरण के लिये महाभयंकर दंगे के दौरान में ही सबसे अधिक शान्ति नगरों में विराजती है।

सूर्य के ऊँचे मकानों की ओट होते ही शहर में सन्नाटा छा जाता है। सड़कों-बाज़ारों से सवारी गाड़ियों और ठेलों की गड़गड़ाहट और हटो बचो की पुकार ग़ायब हो जाती है। खोमचे वालों की पुकार सुनाई नहीं पड़ती। गाने-बजाने की आवाज भी नहीं आती। अपने घरों में दुबके लोग बात भी करते हैं तो सहमे हुये। कुछ सुनाई देता है तो केवल सड़कों और गलियों के फ़र्श पर अलसाये कदमों से सिपाहियों के भारी-भारी बूटों के रगड़ने का शब्द।

भयंकर साम्प्रदायिक दंगा हो चुका था। शहर की सब चहल-पहल और यातायात क़ानून के हुक्म से शाम के छः बजे समाप्त हो जाती। छः बजे, यानी ठीक उसी समय जबकि लोग दिन भर कमाई करने के

बाद, जेब में कुछ पैसे डाल, खर्चने के लिये निकलते हैं। मद्दी से यों ही बाज़ार सुस्त था, तिस पर यह छः बजे की बन्दिश! छोटे-छोटे दूकानदारों के तो मानो पेट पर पत्थर आ पड़ा।

ठीक गाहक गिरने के समय ही जब रामसरनदास को अपनी बिसात की दूकान बढ़ा घर की राह लेनी पड़ती, कितनी बद्दुआ और अभिशाप उनके हृदय में घुट-घुटकर रह जाता। वे शहर के गुण्डों को कोसते जिनकी बदौलत मुसीबत आई, सरकार को कोसते जिसके हुक्म से सरे शाम सन्नाटा हो जाता और सबसे अधिक कोसते अपनी किस्मत को!....शहर में दंगा होता ही क्यों? और जब अभी नया माल उनकी दुकान में आया हो।

आधी रात तक बिजली की रोशनी में चमचमाती बिसात सजाये, राह चलते गाहकों को घूर-घूरकर भाँपने में, यह आयगा, वह आयगा और किसी गाहक की उड़ती-उड़ती दृष्टि दुकान की ओर आती देख, गर्दन उठा—'क्या चाहिये?' पूछ लेने से एक संतोष होता था। सूरज छिपे ही घर जा लेटने की मजबूरी यंत्रणा हो गई।

बेबसी में घर लौट बेमन भोजन किया। कुछ हवा पाने की आशा से तिमंजले पर बर्साती के सामने, जहाँ सामान के खाली बक्से और फूस जमा थे, खाट डाल, हुक्के की निगाली होठों में दबा लेट गये।

× × ×

भाग्य जब रूठता है उसकी निर्दयता की सीमा नहीं रहती! हल्की-हल्की हवा की थपकियों से सान्त्वना पा रामसरन को झपकी आने लगी। हवा की वैसीही एक थपकी से एक चिनगारी चिलम से उड़ी और बर्साती के कोने में लगे फूस के ढेर में जा पहुँची। हल्की-हल्की हवा ने पंखा कर चिनगारी को चिताया, लपटें उठने लगीं।

साँस में असुविधा अनुभव होने से रामसरन हड़बड़ाकर उठ खड़े हुये। धुआँ और लपटें देख मुख से हाय की पुकार निकली और अम्म

मे खाट पर गिर पड़े । फिर उठे और बदहवासी में चिल्लाने लगे !—
'आग ! आग !!'

मकान के दोनों ओर गलियाँ थी । गली की चौड़ाई तीन चार हाथ से अधिक न थी परन्तु तीसरी छत की ऊँचाई पर इतना लाँघ जाने का साहस बिरले को ही हो सकता है । पड़ोसी अपनी छतों पर आ चिल्ला-चिल्ला कर सलाह-मशविरा दे साहस बँधाने लगे । घर की स्त्रियाँ और बच्चे चीख-चीख नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे भागने लगे । इस कोहराम में रामसरन की रही सही सुध भी जाती रही ।

घर में जितना जल घड़ों, गागर और बाल्टियों में था, आग पर डाल दिया गया । इस पर भी आग की तृपार्त जिह्वायें लपलपाती रहीं । अधिक पानी था नहीं । रात के नौ बजे शहरों में नल बन्द हो जाते हैं ।

पड़ोस की छत से किसी ने राय दी—'फ़ोन कर दो, फ़ोन !' रामसरन दौड़े हुये नीचे पहुँचे । गली में पाँव रखने से पहले ही ध्यान आया—'कर्फ़्यू !' क़दम रुक गये और बदहवासी में फिर ज़ीना चढ़ने लगे । पिंजरे में बंद गिलहरी की तरह दो-तीन दफ़े ऊपर नीचे भागे । घर में आग की लपटें और गली में कर्फ़्यू ! पड़ोसियों ने धमकाया और ढारस बँधाया । कोई उपाय न देख रामसरन फ़ोन करने के लिये गली में उतर गये ।

गली पार नहीं कर पाये थे कि बिजलीसी कड़क उठी—'हल्ट !' रामसरन ने सामने देखा, 'गोरा' सिपाही !

दोनों हाथों से अपने घर की ओर संकेत कर रामसरन ने घिघियाए स्वर में दुहाई दी—'आग, साहब आग !' और वह बाज़ार की ओर बढ़ जाना चाहते थे ।

'हल्ट !'—और अधिक कर्कश स्वर में गोरे ने धमकाया और अपनी धमकी को अनिवार्य कर देने के लिये हाथों में थमी बन्दूक की नली रामसरन के सीने की ओर कर दी ।

रामसरन की बोलती बंद। पैरों तले धरती फट गई....जैसे वे उसमें समा गये। दूसरे क्षण चेतना लौटने पर वे हाथ बाँध गिड़गिड़ाने लगे—'हजूर छोटे-छोटे बच्चे........घर में आग........!'

गोरे सिपाही ने घूरकर देखा और गुर्रा दिया। वह कुछ समझा नहीं। समझने की ज़रूरत भी न समझी। दोनों एक दूसरे की ओर देखते आमने-सामने खड़े थे। गोरा अपने शिकार को निकल भागने न देने के लिये चीते की तरह तत्पर ; रामसरन पिछली टाँगों में दुम दबाये प्राण रक्षा के लिये काँपते हुये गीदड़ की भाँति।

पेट्रोल की चक्कर लगाती लारी गोरे के इशारे पर खड़ी हुई। रामसरन को उसमें धकेल दिया गया। रामसरन 'हाय-हाय' चिल्ला रहे थे और गाड़ी चलती जा रही थी।

लारी में हिन्दुस्तानी इन्स्पेक्टर साहब थे। रामसरन की बोली उन्हें समझ आ रही थी परन्तु उसका दरद नहीं। 'चुप बैठो!'—उन्होंने हुक्म दिया—'थाने में चलकर रपट लिखाना! शोर मत करो!' लारी-ड्राइवर इन्स्पेक्टर साहब को एक मज़ेदार किस्सा सुना रहे थे। दो दफ़े शोर न करने की ताकीद रामसरन को की गई। रामसरन चुप रह न सकता था। आखिर एक करारा चाँटा मुँह पर पड़ने से ही वह चुप हुआ। लारी अनेक बाज़ारों का चक्कर लगाती, जगह-जगह से गिरफ्तार लोगों को बटोरती, दो घण्टे बाद थाने पहुँची।

मुंशीजी ने मुलज़िमों को एक लाइन में खड़े होने का हुक्म दिया और एक-एक की रपट और हुलिया रोज़नामचे में दर्ज करने लगे। पन्द्रह आदमियों में रामसरन आठवें नम्बर पर खड़े थे। लेकिन बार-बार बीच में चिल्ला उठते—'हुज़ूर मेरे घर आग लगी है! हजूर पानी कल को फ़ोन........!'

दो दफ़े अपनी बारी से बोलने को कहा गया। पर रामसरन जमीन छू, हाथ जोड़ अपनी बात कहे ही जा रहे थे। मुंशीजी ने धमकाया—

'साले, यहाँ हम सरकारी काम करने बैठे हैं कि तुम मा....घर में आग लगा कर अवारा गर्दी करो और हम तुम्हारे बाप के नौकर हैं फ़ोन करने के'....इस तर्क से भी रामसरन का गिड़गिड़ाना बन्द न हुआ। परेशान हो मुंशीजी ने संतरी को हुक्म दिया,—'ज़रा अक्ल ठीक करो साले की....!'

पीठ पर दो लातें पड़ने से रामसरन और भी ऊँचे स्वर में मदद के लिये वावेला मचाने लगे। इस शोर से काम में खलल पड़ रहा था। आखिर तीसरी भरपूर लात पड़ी और रामसरन के कण्ठ में उठती चिल्लाहट आधे में ही रह कर हिचकी आने लगी।

रपट लिखने का काम बदस्तूर चल रहा था। चौदह आदमियों की रपट दर्ज हो जाने पर रामसरन को पुकारा गया। वह अब भी बराम्दे के एक खम्भे से पीठ लगाये हिचकियाँ ले रहे थे।

मुंशीजी के हुक्म से एक लोटा पानी उसे दिया गया। कुछ घूँट पानी निगल लेने पर हिचकी बंद हुई। मुंशीजी और दूसरे लोगों के अनेक बेर प्रश्न करने पर भी शब्द मुख से न निकल पाये। केवल होंठ काँप कर रह गये।

मुंशीजी ने क्रोध में रोज़नामचा पटक दिया—'चले थे वदन....गुण्डे बन के अवारागर्दी करने !.......अब मेंढक की तरह गलफड़े हिला रहे हैं। अबे साले नाम-पता नहीं बतायेगा तो तेरे बाप दमकल को फ़ोन करेंगे तेरी माँ के........!

हुचकते-हुचकते रामसरन ने नाम-पता बताया। फौरन फ़ोन कर दिया गया। जवाब भी मिल गया—आग बुझ चुकी है। शेष रात रामसरन ने हवालात में बिसूरते-बिसूरते बिताई।

सूरज निकलते-निकलते रामसरन के पड़ोसी सहानुभूति से उसकी जमानत दे छुड़ाने आ पहुँचे। परन्तु दस बजे मैजिस्ट्रेट के सामने पेश हुये बिना यह कैसे हो सकता था ?

दस बजे रामसरन दूसरे चौदह मुलजिमों के साथ अदालत पहुँचे।

आनरेरी मैजिस्ट्रेट गर्दन झुकाये हर एक मुलज़िम को दो रुपये जुर्माना करते जा रहे थे। वही हुक्म उन्होंने रामसरन को भी सुना दिया। रामसरन के पड़ोसियों ने वकील खड़ा किया था। वकील साहब बोले—'हुज़ूर मुलज़िम सफ़ाई देना चाहता है!' और उन्होंने पिछली रात रामसरन के घर आग लगने और उस हालत में फ़ोन करने जाने की सफ़ाई पेश की।

मैजिस्ट्रेट साहब की कलम रुक गई। सफ़ाई माकूल जान पड़ी। लेकिन घर में आग लगने की हालत में बिना पास के, कर्फ़्यू में निकलने की गुंजाइश कानून में है या नहीं! इस मामले की कोई नज़ीर अदालत को याद न थी।

परेशानी से बोझल भवें उठा मैजिस्ट्रेट साहब ने कहा—'अरे भाई दो रुपया देकर छुट्टी करोगे या तारीख डाली जाय?........गवाहों का तलबाना दाख़िल करोगे?'

रामसरन के व्यवहारिक मस्तिष्क में सूझा, गवाहों का तलबाना,....दस पाँच पेशी के लिये वकीलों की फ़ीस....फिर जजी और हाईकोर्ट में अपील........!

वकील साहब ने रामसरन के कान में धीमे से कहा—'क़ानूनन तुम बरी हो जाओगे। क़ानून तुम्हारी हिफ़ाज़त करेगा!' रामसरन सोचने लगे। मैजिस्ट्रेट साहब ने ऊँचे स्वर में पुकारा—'बोलो!'

वकील की ओर देख रामसरन ने उत्तर दिया—'हाँ ठीक तो है'! परन्तु हाथों ने बण्डी की जेब से जुर्माने के दो रुपये निकाल मुहर्रिर की ओर बढ़ा दिये।

---

# ११

## जादू के चावल

जमील मेहर के मामू के साले का लड़का था। इस रिश्ते से अधिक थी, जमील की मेहर के बड़े भाई सदाक़तख़ाँ से दोस्ती। वह शुरू से मेहर के यहाँ आता-जाता। उससे परदा न था। मेहर उसके सामने निकलती, पानी और पान से ख़ातिर कर बैठने को कहती। लेकिन जब उसे जमील की निगाह पर शक हुआ, मेहर ने जमील के सामने होना छोड़ दिया। जमील की आँखें उसे चुभती-सी जान पड़तीं। जान पड़ता, जमील की नज़रें एक पंजा-सा डाल उसे पकड़ लेना चाहती हैं। वह सिमिट सी जाती।

मेहर ने उसे भाई का हँसमुख दोस्त और रिश्तेदार समझ, भाई जैसा ही ख़याल किया था। अच्छी खासी बेतकुल्लुफ़ी थी। अब उसकी निगाह में फ़रक देख, उसके सामने जाते मेहर को झिझक होने लगी। उसे जमील से डर-सा लगने लगा, बदन में सिहरन-सी फैल जाती। लेकिन पहले कभी परदा किया नहीं तो अब सहसा उससे शरम करते भी न बनता। जमील की बेताबी बढ़ती जाती। मेहर बेचारी क्या करे? मन होता, अपने आपको कहीं ज़मीन में गाड़ दे।

उम्र मेहर की वही थी, जिसे चढ़ती जवानी कहते हैं; पर उसमें

आती बहार की चुलबुलाहट नहीं, जाती बहार की निराशा ही थी। उम्र जो भी हो, वह अपने ख़याल में बहारेजवानी से हाथ धो बैठी थी। मेहर का निकाह माँ-बाप ने तेरह बरस की उम्र में ही एक होनहार लड़के से कर दिया था। बेचारी केवल एक बार महीने भर के लिये ससुराल गई थी। उसका शौहर क़ानून का इम्तहान देने की तैयारी कर रहा था कि निमोनिया हो गया। उठती जवानी में, दुनिया का कुछ भी देखे-सुने बिना, फूल-सी सुकुमार बीबी को दुनिया में बाहर आने से पहले से ही उजाड़, वह चल बसा।

मेहर के माँ-बाप ने माथा ठोक लिया। दुलार से पाली बेटी को घर में रख चुप बैठ गये। मेहर ने सोचा, ख़ुदा को उसका बेवा होकर रहना ही मंज़ूर है तो कोई क्या करे ? ख़ुदा की इबादत में अपने दिन बिता, वह शरीफ़ खान्दान की इज़्ज़त निबाह देगी। ख़ुदा ने और सब कुछ तो दिया है—माँ-बाप का प्यार है, भाई हैं, भाभी हैं और उनके बच्चे हैं। यही उसका अपना घर है। बुज़ुर्गी की गम्भीरता उसके जवान होते दिल पर छा गई। उसे न कपड़ों जेवरों का शौक़ रहा न दूसरी रंगीनियों का। उम्र अधिक न होने पर भी वह 'आपा' बन बैठी।

मेहर के पिता मियाँ मुनव्वरखाँ को अपनी इज़्ज़त का बहुत ख़याल था। लड़की की इस उम्र में उसका सोग उन्हें खलता न हो सो बात नहीं ; पर ख़ुद ही सोचने लगते, अगर किसी जाहिल ने कह दिया कि लड़की में कोई नुक़्स है जो जवान शौहर को खा बैठी तो कहीं मुँह दिखाने के न रहेंगे। इसी ग़म और आशंका में वे चुप रह जाते। यह चुप्पी उन्हें और भी मारे डालती थी।

इसी तरह कम नहीं, सात बरस बीत गये। लेकिन अब जमील की बदली निगाहें मेहर को परेशान करने लगीं। इन निगाहों के सामने उसके आपापन की गम्भीरता क़ायम नहीं रह पाती। वह उससे झुबकती फिरती है जैसे घर की पूसी शिकारी कुत्ते की गुर्राहट सुन घर के कोने में

सिमट जाय। वह जानती है, जमील उसकी ओर गहरी नज़रों से देखने और अकेले में कोई बात कहने का मौक़ा ढूँढ़ता रहता है।

एक दिन जेठ की जलती दुपहरी में, जब सब लोग सो रहे थे, जमील आया। मेहर को अकेले देख उसने कहा—'मैं तुम्हारे बिना जी न सकूँगा। मेहर, हम से नाराज़ क्यों रहती हो?'

मेहर के पाँव लड़खड़ा गये। वह झपटती हुई भीतर गई और बिस्तर पर लेट, दुपट्टा मुँह में ले रोने लगी।

मेहर के भाई सदाक़त गहरी तबीअत के आदमी थे। उन्होंने जमील की बेचैन देखी और मेहर का डर देखा, पर चुप रहे। उन्होंने बहुत देर तक सोचा और निश्चय किया, मेहर बहुत नेकबख़्त और शरमीली है लेकिन पहाड़-सी उम्र भी तो सामने है। अब्बा, माँ और भाई हैं पर वे अपनी जगह हैं। मायके का घर चाहे जैसा हो, लड़की के लिये कभी अपना घर नहीं हो सकता। जमील ज़िन्दादिल, खान्दानी और नेक जवान है और अपना अज़ीज़। उसके दिल में मेहर के लिये ख़याल है तो इससे अच्छा और क्या हो सकता है? सोचा—चलने दो, जब उनके देखने का वक़्त आयगा, देख लेंगे।

लेकिन मेहर की उपेक्षा जमील के लिये अंगारों की सेज हो गई। वह सोचता—क्या वह इतना गया-बीता है कि मेहर उससे घृणा करे? वह एक दफ़े मेहर के क़दमों में अपना दिल खोल कर रख देना चाहता था। तिस पर भी अगर मेहर उसे ठुकरा दे तो फिर वह उसे अपनी किस्मत समझ चुप रह जायगा। एक दफ़े खुल कर मेहर से सवाल-जवाब कर पाने का मौक़ा न मिलने के कारण उसे जान पड़ने लगा, उससे बढ़कर बदनसीब दुनिया में कोई नहीं। उसका दिल सुलग कर रह जाता, जब वह देखता कि मेहर उसे आड़ दे जाती है।

एक दिन जमील जान पर खेल गया। उसने पता ले लिया कि मेहर दो-मंज़िले पर कोने की कोठरी में सोती है। बूँदा-बाँदी की अँधेरी

रात में जब सब लोग छतों के नीचे दुबके थे, जमील मकान के पिछवाड़े में पानी का नल थाम, दीवार के कोने पर बनी सीमेण्ट की पुस्तियों पर पाँव के अँगूठे टिकाता, छत पर जा पहुँचा। मेहर ने अपनी कोठरी के दरवाज़े पर दस्तक सुनी तो घबराकर पूछा—'अम्माँ?' पर आवाज़ दूसरी थी, तब उसने बूढ़ी नौकरानी का नाम ले पूछा—'अन्ना?'

मेहर ने आवाज़ पहिचानी। आवाज़ जमील की थी और वह अपना नाम बता रहा था।

मेहर को किवाड़ की चिटखनी पर हाथ धरे जान जमील ने बहुत धीमे से कहा—'देखो तुम्हारे लिये जान पर खेल, दीवार के सहारे ऊपर चढ़ आया हूँ। बदन तमाम छिलकर लहू-लुहान हो गया है। अब अगर तुम किवाड़ नहीं खोलोगी तो तुम्हारी कसम, यहीं दोमंज़िले से पक्की गली में कूद कर जान दे दूँगा और खुदा की क़सम, दरवाज़ा खोल दोगी तो तुम्हारे बदन में हाथ न लगाऊँगा। सिर्फ़ एक बात तुमसे पूछना चाहता हूँ।'

काँपते हुए हाथों से चिटखनी हटा मेहर ने किवाड़ खोल दिये। अँधेरे में ही उसने देखा, सचमुच जमील के कपड़े जगह-जगह से घसिट कर फट गये थे और कपड़ों पर खून छलक आया था। मेहर अपना सिर घुटनों में दे एक ओर बैठ रोने लगी। जमील ने उसके समीप जा धीमे परन्तु दृढ़ स्वर में पूछा—'यह बताओ, आख़िर तुम्हें मुझसे इतनी नफ़रत क्यों है? मेरा कसूर सिर्फ़ इतना है कि तुमसे मुहब्बत करता हूँ। आज मैं फैसला करने आया हूँ, तुम्हारे दिल में मेरे लिये जगह है या नहीं? अगर नहीं तो साफ़ कह दो। चाहे मैं अपने आपको ख़त्म कर दूँ या कहीं चला जाऊँ लेकिन अपनी सूरत दिखा तुम्हें परेशान न करूँगा। साफ़ कह दो।'

जमील की धमकी सुन मेहर चुप रह गई। फ़र्श पर वैसे ही उँकड़ू

बैठी वह नीचे देखती रही। उसके नज़दीक आ जमील ने फिर पूछा—'तुम मुझे ग़ैर समझती हो, मुझसे नफ़रत करती हो ?'

मेहर चुप रही।

जमील ने अपना सवाल दोहराया और कहा—'रोज़ तो पूछने आऊँगा नहीं, एक दफ़े जवाब दे दो। किसी की ज़िन्दगी और मौत का फ़ैसला तुम्हारे बोलने न बोलने पर है।'

मेहर का कलेजा मुँह को आ रहा था पर वह क्या जवाब दे ? जमील ने फिर पूछा—'मुझसे नफ़रत करती हो न ?' मेहर ने सिर हिला दिया कि नहीं। तब एक क़दम आगे बढ़ जमील ने पूछा—'मुझसे मुहब्बत करोगी ?'

बजाय गरदन हिलाने के मेहर का सम्पूर्ण शरीर ही लज्जा से जमीन में गड़ गया। जमील ने कहा—'देखो मेहर, मेरी ज़िन्दगी से खिलवाड़ मत करो। साफ़-साफ़ कह दो, मुझसे मुहब्बत कर सकती हो या नहीं।'

मेहर को ऐसा जान पड़ रहा था कि सामने बहुत चौड़ी और गहरी खाई है जिसे लाँघ जाने के लिये वह क़दम उठाना चाहती है, परन्तु हिम्मत नहीं पड़ती। बहुत साहस कर उसने गरदन झुका कर हामी भर दी। मानो वह खाई को फाँद गई।

जमील अपना इकरार भूल गया। उसने मेहर को बाहों में ले सीने से लगा लिया। मेहर को भी ऐसा मालूम हुआ कि वह बवण्डर में एक सूखे पत्ते की तरह उड़ी जा रही थी और अचानक उसके पाँव राहत की ज़मीन पर टिक गये। जमील ने उसे गोद में ले पूछा—'तो इतने दिन से मुझे जला क्यों रही थी ?'

मेहर से कोई जवाब देते न बना। उसने अपना सिर जमील के सीने पर ऐसे दबा दिया कि दुनिया की आँखों से छिप जाने के लिये उस परदे के भीतर चली जाना चाहती है। जमील ने अपना सवाल

फिर दोहराया तो कठिनाई से सुने जा सकने लायक स्वर में उसने कहा—'हाँ, तुम बड़े वैसे हो !........हमें जलाते थे।"

लौटते समय जमील के उस खतरे में जाने की बात सोच मेहर का कलेजा धक-धक करने लगा। पलंग की निवाड़ खोल, छत के बरसाती पतनाले में बाँध जमील गली में उतर गया। पतनाले से निवाड़ खोल पलंग में लपेट मेहर सुबह तक जमील के सही-सलामत घर पहुँच जाने की दुआ माँगती रही।

× × ×

सदाक़त ने घर में ज़िक्र किया—'जमील के कहीं खोंचा लग जाने के कारण उसकी तबीअत ज़रा सुस्त है।' मेहर ने सुना और उसके जी में आया, यह सब उसी कमनसीब की वजह से ! हाय मैं मर जाऊँ।

इसके बाद जब जमील आता, मेहर के दिल में होता कि सब हट जायँ, वह उसे मन भर देखे। आँखें चार होते ही सुर्ख हो जातीं। मौक़ा मिलने पर जमील उसे छूने से भी बाज़ न आता। मेहर का बदन सिमट जाता पर दिल चाहता कि ऐसा ही बना रहे। अकेली बैठ सोचती, बुराई क्या है ; आखिर मैं इन्हीं की तो हूँ। मेहर दिन भर जमील के नाम की माला जपती। उसे देख न पाती तो पानी से बाहर आ पड़ी मछली की भाँति छटपटाने लगती। ओठों पर शर्म की मोहर थी, किसी से कुछ कह न पाती।

× × ×

मेहर के भाई सदाक़त ने इस परिवर्त्तन को भी भाँपा और दिल में सोचा—अच्छा है, पर जल्दी ठीक नहीं। अगर निभ जाय तो इससे अच्छा और क्या हो सकता है ? जमील अपना अज़ीज़ है। लड़की की ज़िन्दगी सुधर जायगी। उधर वालिद साहब की बीमारी की वजह से भी कुछ ज़िक्र न हो सका। तब उनकी मृत्यु हो जाने पर कम से कम एक बरस के लिये बात टल गई।

इन सब परेशानियों में भी एक पल भर को मेहर के दिल से जमील का ख्याल न उतरता। उसकी आँखें जमील के इन्तज़ार में बिछी रहतीं। जमील के बदलते हुये ढंग उसकी निगाह से कैसे छिप सकते थे?

अव्वल तो वह पहले की तरह आता नहीं। आता तो जैसे उखड़ा-उखड़ा-सा, आँखें चुराता हुआ। कभी कठिनाई से अकेले में समय निकाल मेहर उससे दो बातें करना चाहती तो वह कतरा जाता। मेहर के दिल पर छुरी-सी चल जाती पर बेबसी में कुछ कह न पाती। दिनों वह सोचा करती है, जमील शायद आज आवे। वह आता नहीं और जब आता है तो इस कोशिश में रहता है कि मेहर से आँखें चार न हों। मेहर सोचती है, क्या इनका दिल फिर गया; क्या मन कहीं और लगा है? एक दिन साहस कर अकेले में उसने पूछा—'यह तुम्हें हो क्या गया? तुमने तो जैसे दिल से बिलकुल निकाल ही दिया?'

जमील ने उत्तर दिया—'नहीं तो। समय ही कहाँ मिलता है? उसका आना-जाना और भी कम हो गया।

घर की नौकरानी अन्ना को जमील के यहाँ भेज मेहर ने पता लिया, आख़िर बात क्या है? अन्ना ने ख़बर लगाई, साहबज़ादे आजकल अस्पताल की किसी मिसिया के फिराक़ में हैं। अकसर उसे ले ताँगे पर सैर किया करते हैं।

मेहर के दिल पर साँप लोट गया। खाना और नींद दोनों हराम हो गये। दिन भर बैठी सोचा करती और हज़ार बहानों से जमील को किसी तरह बुलाने की कोशिश करती। वह चाहती थी, किसी तरह एक दफ़े मौक़ा मिल जाय तो उससे दो-दो बातें करे; फिर देखा जायगा। वह मन में सोचती, जमील ने यह सब फ़रेब केवल उसे फँसाने के लिये किया था; पर मन न मानता। उसे उस रात की बात याद आ जाती और जमील का खून के दाग़ों से भरा जिस्म दिखाई देने लगता। वह सोचती, फ़रेब और दिल्लगी में यह सब नहीं हो सकता।

फिर सोचती, तब मुझमें क्या था जो अब नहीं रहा ? ख़याल आता, मर्दों का यही कायदा है एक फूल का रस लिया और दूसरे पर उड़ गये। जमील के ज़िंदगी और मौत के क़ौल याद आते। फिर उस चुड़ैल पर गुस्सा आने लगता, जिसने जमील का मन उसकी तरफ़ से फेर दिया।

सदाक़त से जमील के यह नये तौर भी छिपे न रहे। उन्हें नौजवान लड़के के यों बिगड़ जाने का अफ़सोस था परन्तु सन्तोष भी था कि अच्छा ही हुआ उजलत में बहिन को मुसीबत में न डाल बैठे वर्ना उम्र भर की कलख हो जाती। इस बीच में उनके चचेरे फूफ़ा के लड़के अफ़ज़ल की बीवी चल बसी। अफ़ज़ल उम्र के ज़रा चढ़ते थे। एक बच्चा भी था तो क्या ? तबीअत के बहुत भले और कारोबारी आदमी। ज़मीन जायदाद की भी कमी नहीं।

सदाक़त ने ज़िक्र किया, बहिन मेहर का इन्तज़ाम वहाँ बन जाय तो अच्छा है। मेहर ने मुँह खोल दिया—'शादी वह करेगी तो जमील से वर्ना नहीं।'

अम्माँ ने हज़ार समझाया, यह शरीफ खान्दान की लड़कियों के ढंग नहीं। पर मेहर को तो जुनून सवार था। कह दिया—'वह एक बार जमील की हो चुकी तो उसी की रहेगी। वह चाहे उसे ठुकरा दे।'

जमील को अपने यहाँ किसी तरह आते न देख मेहर ने एक दिन मामू के यहाँ जाने का बहाना किया और बूढ़ी अन्ना को साथ ले जमील के यहाँ जा पहुँची। जमील बाहर जाने को तैयार था। वह उसके पाँव पर गिर रोने लगी। उसे परे हटाने की कोशिश कर जमील ने कहा—'मेहर, इससे फ़ायदा ? मुझे जाने दो !'

रोकर मेहर ने पूछा—'मैंने क्या क़ुसूर किया है ? यों लूट लेने के बाद मुझे ठुकरा रहे हो ?'

दिल जमील का भी पिघल आया पर स्वर कड़ा कर उत्तर दिया—

'तुम्हें मैंने क्या लूट लिया ? तुम से मुहब्बत की तो मुहब्बत पाई भी। अब दूसरे का ख़्याल है तो धोखा देने के लिये मजबूर क्यों करती हो ?'

तड़प कर मेहर ने जवाब दिया,—'ऐसे ही मुहब्बत करके तोड़ी जाती होगी ? तब तो जान देने को फिरते थे, अब क्या हो गया ?' रूखे होकर जमील ने कहा—'तब दिल वही कहता था अब नहीं कहता। तुम्हें एक दफ़े प्यार करने की जो सज़ा चाहो दे सकती हो; पर ज़बरन प्यार नहीं करा सकतीं।' मेहर को जैसे काठ मार गया। जमील उसके सामने से चला गया और वह देखती रह गई।

घर लौट कर वह बहुत रोई; फैसला किया कि मर जायगी पर ऐसे बेदर्द और बेगैरत से शिकवा न करेगी। फैसला तो किया पर मन न माना। वह सोचती, हाय, पहाड़-सी भारी यह जिन्दगी कैसे कटेगी ? दग़ा ही देना था तो मुझे अपनाया ही क्यों था ? अब मैं किसकी होकर रहूँगी ?

अस्पताल की उस मिसिया डायन पर मेहर को गुस्सा आने लगता जिसने जमील को अपने फ़रेब में भरमा लिया, जिसने उसका आशियाँ बसने से पहले जला दिया। उस चुड़ैल पर कहर गिराने के लिये मेहर ने अम्मा की मदद से पीरों-फ़कीरों से गण्डे तावीज़ लेने शुरू किये। पर कोई असर होता दिखाई न दिया। हर रोज़ सुबह वह जमील के लौट आने की आस बाँधती और बड़ी रात गये निराश हो जाती। कभी मन बहुत बेचैन हो जाता तो जमील को एक नज़र देख पाने के लिये अम्मा को ले अपने नाते-रिश्तेदारों के यहाँ चक्कर लगाती फिरती। वहाँ भी निराशा होती। इससे आगे बढ़ी, ताँगा किराये कर इस बाज़ार से उस बाज़ार जमील को ढूँढ़ती फिरती। दाम न रहने पर ताँगेवाले को किराये में अँगूठी या कोई जेवर दे डालती। इस अपव्ययन पर भाई डाँटते और अम्माँ कहतीं—ऐसी बेगैरत और मर्द लड़की तो कभी सुनी नहीं थी। मेहर खुश्क आँखों से पागलों की तरह देखकर जवाब देती—'मेरी दुनिया छूट गई! मैं उसी को ढूँढ़ती हूँ!'

अन्ना ने खोज लगाई, जमील को भरमा लेनेवाली मिसिया छावनी वाले अस्पताल में रहती है। एक फ़क़ीर से वजीफ़ा पढ़वाकर अन्ना कुछ चावल ले आई और बताया, जिस पर डाल दिये जायँ उसे कोढ़ फूट कर मौत हो जायगी।

बदले की आग में जलती हुई मेहर चावल की पुड़िया ले छावनी वाले अस्पताल की मिसिया को ख़त्म कर देने के लिये घर से निकल पड़ी। मन में सोच रही थी, वह मिस जाने कितनी हसीन होगी? उसके सामने वह किस मुँह से जायगी? उसने तय किया, एक दफ़े वह मिस से कह देगी कि उसका जमील उसे फेर दे वर्ना उसकी दुनिया उजाड़ने का फल भोगे।

अस्पताल पहुँच, ऊँची घँघरिया पहिने साँवली-साँवली मिस जिम को देख मेहर विस्मय से सोचने लगी—'हाय, इस चुड़ैल में क्या रखा है?'

मेहर को अपने यहाँ आते देख, मिस जिम ने पूछा—'तुम कौन है, क्या माँगता है?'

मेहर ने जवाब दिया—'तुम हमारे मर्द के पीछे क्यों पड़ी हो? तुम उससे ताल्लुक छोड़ दो, वर्ना अच्छा नहीं होगा।'—कहते-कहते मेहर को गुस्सा आ गया और बोली—'हम पठान हैं, तुम हमारे मर्द से ताल्लुक रखोगी तो हम अपना और तुम्हारा खून एक कर देंगे! समझती हो!'

'कौन तुम्हारा मर्द?'—हैरानी से मिस जिम ने पूछा।

'जमील खाँ! जिसे तुमने बहका लिया है और कौन?'—मेहर ने धमका कर जवाब दिया—'तुमने हमारी जिन्दगी बरबाद कर दी।'

मिस जिम को भी तैश आ गया, बोली—'हम किसी को क्यों बहकायेंगी। हम क्या इनके की गुलाम हैं? तुम्हारा नामर्द मर्द को खराब बना उसे पाँव बाँधे रखने के लिये फरेब डालता फिरता है? हमें खुदा ने हाथ-पैर दिये हैं। हमारी ज़िन्दगी कौन बना-बिगाड़ सकता है? वह

है ?' सो ज़ाहिरा माँ के भेज देने से ही हम लोग रानीखेत पहाड़ गये थे।

बरसात का जिसे बहुत शौक़ हो, उसे चौमासे भर रानीखेत में रख देना अच्छा इलाज होगा। पूरे नौ दिन लगातार बरसने के बाद सुबह के समय सूरज ने दर्शन दिये थे। बरामदे में बैठा पिछले रोज़ के अख़बार के पन्ने पलट, चाय का इन्तज़ार कर रहा था। नज़र इधर-उधर धूप में झलमलाती भीगी वनराशि पर थी, जैसे सुन्दरी पानी से निकल बदन पोंछने की तैयारी में हो। पत्ते-पत्ते से टपकती जल की बूँदें ऐसी जान पड़तीं मानो सुन्दरी के केशों और पलकों में मोती लटक रहे हों। जहाँ-तहाँ कोहरे के बादल मँडरा रहे थे। बस्ती के मकान, खेत, पशु सब कई दिन की नींद के बाद एक झीनी मसहरी में से ताज़गी की अँगड़ाइयाँ लेते दिखाई देते थे।

कन्धों पर तौलिया डाल उस पर भीगे बालों को फैलाये, अपने हाथों चाय की ट्रे थामे श्रीमतीजी आईं। प्रसन्नता और उत्साह का जब कोई विशेष कारण होता है, नौकरों-चाकरों की मौजूदगी से वे उसे नीरस नहीं कर देना चाहतीं, तभी वे किसी चीज़ को ख़ुद उठा कर लाती हैं। उनकी आँखों में ख़ुशी चमक रही थी। ट्रे तिपाई पर रखते समय केशों की जो चञ्चल लटें सामने लटक आईं, उन्हें उलटे हाथ से पीठ पीछे डाल, अपनी बड़ी-बड़ी और कमज़ोरी के कारण और भी अधिक बड़ी जान पड़ रही, आँखों को घुमा-फिरा कर आश्चर्य प्रकट करते हुए उन्होंने कहा—'जी, मैं तो सचमुच हैरान रह गई। इन कमीने आदमियों से इतनी भलमनसाहत की आशा कौन कर सकता है ?'

इस भूमिका को कुछ न समझ, हाथ का अख़बार तहाते हुए पूछा—'क्यों क्या हुआ ?'

प्याली में चाय डालते हुए वे बोलीं—'बाल धोने में दस्तबन्द बार-बार उलझ जाते हैं। इसीसे उतार कर ताक में रख दिये थे।

न जाने कैसे भूल गई.......।' कहना चाहता था, भूल जाना तो तुम्हारा पुराना गुण है परन्तु इससे उनके बिगड़ उठने का डर था। केवल हुंकार भर सुनता गया—'भोला चाय में देर क्यों कर रहा है, यह देखने के लिये उधर जा रही थी कि रितिया ने हँसते हुए आकर कहा—'बीबीजी तुम्हारी कोई चीज़ खोई है ?' मैंने ज़वाब दिया, नहीं तो ? हँस कर दस्तबन्द उसने मेरे हाथ पर रख दिये। सोचो तो, अगर वह छिपा लेती ?'

यह कहना भूल गया कि रितिया छोटी जाति की औरत थी। जिस जाति की औरतों का काम भले घरों में चाकरी और खिदमत करना है। इन स्त्रियों के चालचलन के बारे में वहाँ के लोगों की धारणा अच्छी नहीं। मज़ाक़ के ख़्याल से कहा—'अरे, उसने समझा होगा पीतल है।'

श्रीमतीजी के माथे पर बल पड़ गये, बोलीं—'वाहजी, ऐसी हिम्मत वह कर सकती है !' मुझे मुस्कराते देख उन्होंने कहा—'किसी में गुण हो तो उसे स्वीकार करना चाहिए। क्या वह कभी यह आशा कर सकती है कि मैं पीतल पहिनूँगी ?'

उनके गुस्से को तरह देने के लिये पूछा—'हज़ूर ने उसे क्या इनाम दिया ?'

श्रीमतीजी ने कहा—'वह मेरी साड़ी धोकर धूप में डालने जा रही थी ; वही मैंने उसे दे दी।'

उनकी तारीफ़ के लिये कहा—'ख़ैर, तो अभी इस देश में कर्ण जैसे दानियों का प्रभाव बाक़ी है।'

प्याली से चाय का एक घूँट भर श्रीमतीजी ने कहा—'जी, कोई नेकी की राह चले तो उसका उत्साह बढ़ाना ज़रूरी है। भला रितिया जैसी औरत के लिये तीन-साढ़े तीनसौ मामूली चीज़ है ? सोना पाने में

बाँध यदि वह पहाड़ से नीचे उतर जाती........हमें पता भी न चलता।
क्या कहते हो ?'

उत्तर दिया—'हाँ ठीक तो है।'

उनका उत्साह पूरा न हो पाया था। फिर बोलीं—'जी, तुम समझते नहीं। सब पाप की जड़ लोभ है। लोभी आदमी को देखकर तो मेरा मन जल जाता है। अब तुम कहोगे कि घरवाले मुझे सुहाते नहीं; पर जेठानीजी की यही बात तो मुझसे सही नहीं जाती........।'

घर के झगड़ों को उठाकर कहीं श्रीमतीजी उत्तेजित न हो जायँ, इससे बात टालने के लिये कहा—'पर लोभी तो मैं भी हूँ।' अपनी बात पर ज़ोर दे उन्होंने कहा—'वाह, कभी नहीं! तुम्हें काहे का लोभ है?' आसपास किसी को न देख जवाब दिया—'तुम्हारे रूप का!' श्रीमती जी के पीले चेहरे पर हलकी मुस्कान छा गई। कुछ सिमिट कर उन्होंने कहा—'हटो भी!'

समझा कि बात आई-गई हुई; परन्तु दूसरी प्याली में चाय छोड़ते हुए उन्होंने फिर कहना आरम्भ किया—'ऐसा भरोसे लायक आदमी मुश्किल से मिलता है। मैं तो रितिया को अपने साथ लखनऊ ले जाऊँगी।'

बहस करना फिज़ूल था। उससे स्त्रियों के समान अधिकार और बराबरी का प्रश्न छिड़कर श्रीमतीजी के खून का दबाव बढ़ जाता। सोचा, जब समय आयगा, देखा जायगा और कहा—'हाँ, हाँ, तो आगे का दिन तो आ लेने दो।'

× × ×

भादों भी बीत चुका था परन्तु रानीखेत की बरसात में कोई कमी आती दिखाई नहीं दी। काले-धौले बादलों के दल के दल आते और गरज-गरज कर बरसते चले जाते। जाड़े का यह हाल कि अँगीठियाँ जलने लगीं। कहीं आने-जाने का कुछ सवाल नहीं। रोशनी

के लिये, बन्द खिड़की के काँच के समीप, कम्बल लपेटे आराम कुरसी पर पड़ा एक पुस्तक पढ़ रहा था। कहने को पढ़ रहा था; दरअसल सिगार पीते हुए धुँधले काँच से देख रहा था पीठ पर लकड़ी और कोयले का बोझ लादे, सिकुड़-सिकुड़ कर चलते हुये डोटियालों को। और सोच रहा था, इन्हें हम लोगों की तरह सर्दी नहीं लगती? शायद इसलिये नहीं लगती कि इन लोगों के पास घर बैठकर आग तापने लायक़ पैसा नहीं। इनके पास इतना पैसा होना भी नहीं चाहिए, वरना शरीफ़ आदमियों को कितनी तकलीफ़ हो जायगी। तबीयत नहीं लग रही थी। इच्छा हुई श्रीमती जी को बुलाकर दो एक बात करूँ। फिर सोचा, वे दोपहर में सोकर पूर्ण विश्राम कर रही होंगी; करने दो। तब ख़याल आया, अगर डोटियालों को भी पूर्ण विश्राम के इलाज़वाली बीमारी होने लगे? लेकिन उन लोगों में इतनी नफ़ासत कहाँ?

उसी समय श्रीमतीजी झपटती हुई कमरे में आ पहुँचीं। चेहरे पर गुस्सा ऐसे छाया था जैसे भादों के आकाश में बादल। मेरी कुरसी की पीठ का सहारा ले उन्होंने कहा—'इस रितिया को मैं एक मिनट अपने यहाँ नहीं रख सकती। इसे अभी निकाल दो!....' मेरे हाथ में थमे सिगार के धुएँ से उन्हें खाँसी आ गई। सिगार को खिड़की की सिल पर दूर रख मुस्कराहट से उनका क्रोध दूर करने के लिये पूछा—'क्या अभी?....इसी बारिश में!'

मुस्कराहट की ओर ध्यान न दे माथे की त्योरियों को गहरा करते हुए श्रीमती जी बोलीं—'मैं नहीं जानती! और इस भोला की जगह भी दूसरा आदमी तलाश कर लो। यह सब गन्दगी मैं अपने यहाँ नहीं रखूँगी।'

समझा, मामला संगीन है। श्रीमतीजी की उत्तेजना शान्त करने के लिये आरामकुरसी पर एक ओर खिसक, जगह करते हुये कहा—'अच्छा, यहाँ बैठो तो!' जैसे सुना ही नहीं, बोलीं—'छि....क्या बेहयाई!'

'बेहयाई कैसी ? कौन बेहया'---मैंने पूछा ?'

'यह तुम्हारी रितिया, और कौन ?'—झमक कर श्रीमतीजी ने कहा। गुस्से में वे कहती गईं—'रसोई में, पिछवाड़े के बरामदे में, जब देखो उसकी भोला से फुसर-फुसर चला करती है। बातें ही खतम नहीं होतीं।'

भोला रहनेवाला है कुमाऊँ ज़िले का। उस ज़िले के और आदमियों की तरह नीचे देश में नौकरी कर पेट पालता है। घर से उसका सम्बन्ध यही है कि तीसरे महीने मनीआर्डर भेज देता है। वह माँ के भरोसे का आदमी है। इसीलिये उसे हम लोगों के साथ भेजा गया था।

उनके गुस्से में मज़ाक़ का रंग लाने के लिये बुझते हुये सिगार से एक कश खींच कर मैंने कहा---'तो होने दो तुम्हारा क्या लेते हैं ?'

भन्ना कर वे बोलीं---'क्यों, वह उसका क्या लगता है ?'

सादगी से पूछा--'लगने की ज़रूरत क्या है ? समझ लो रितिया का मन उससे बात करने को चाहता है।'

'तुम कुछ समझते तो हो नहीं'---श्रीमतीजी और भी बिगड़ गईं--'यह चुड़ैल बदचलन है। तुम्हें क्या मालूम उस दिन शाम को भोला बाज़ार से सौदा लेकर लौटा तो तुमने उसे दियासलाई दे जाने के लिये बुला लिया। मैं सौदे के थैले को देख रही थी। देखा--तरकारी के बीच काग़ज़ की पुड़िया है और उसमें हैं काँच के लाल मनकों की माला। अगले दिन वही माला यह बेशरम रितिया पहिने थी। आज सुबह रसोई में उससे कह रही थी, तीन किनारे की बेलदार धोती ला दो। अभी मैं सोकर उठी। एक गिलास पानी के लिए दोनों को जाने कितनी आवाज़ें दीं। खुद उठकर देखने गई, कहाँ मर गये। दोनों रसोई-घर के पिछवाड़े बरामदे में थे। भोला उसे छेड़ रहा था और यह डायन हँस रही थी। यह अभी नहीं रहेगी। दोनों में से मैं किसी को नहीं रखूँगी।

नौकर को निकाल देना आसान है परन्तु नया ढूँढ़ लाना बहुत मुश्किल रितिया की सिफ़ारिश के लिये मैंने कहा—'उस दिन तो तुम कहती थीं, रितिया सोने की है, भरोसे के लायक है, उसे लोभ नहीं........।'

स्त्री की भूल सुझाना मर्द की सबसे बड़ी ग़लती है। उत्तेजित हो श्रीमती जी बोलीं—'लोभी न सही, लुच्ची है, बदचलन है !'

'क्या लुच्चपना किया उसने ?' मैंने पूछा—

'क्या ?'—आँखों की पुतलियों को आकाश की ओर चढ़ा श्रीमती जी ने कहा—'वह उससे मसख़री क्यों करती है ? उससे चीज़ें क्यों माँगती है ?'

इस सवाल का जवाब देना मुश्किल था। श्रीमतीजी का गुस्सा दूर कर उन्हें हँसाना भी ज़रूरी था इसलिये एक दफ़ा और साहस किया—'अरे, ग़रीब औरत है। कोई चीज़ उसने भोला से माँग ही ली तो बिगड़ ही क्या गया ? यही देखो कि ग़रीब होकर भी चोरी नहीं करती ?'

श्रीमतीजी बैठे से उठ खड़ी हुईं और झल्लाहट से बोलीं—'तुम्हें जाने कैसे समझाया जाय ? लोभ तो लोभ, वह तो बदचलन है। तुम्हें उसके लच्छन क्या मालूम ? कमबख़्त का मर्द घर में बैठा है। बुड्ढा है, अपाहिज है, और पहली औरत साथ है। इसीसे यह चुड़ैल घर में नहीं बसती।'

शर्म और लज्जा की यह बात किसी तरह मुख से कह श्रीमतीजी आँखें चुराने के लिये उठकर चली गईं। तब मुझे सिगार से व्यर्थ कश खींचता मैं सोचता रह गया—'यदि इस कमबख़्त जवान छोकरी का मर्द बूढ़ा और अपाहिज है तब तो इसका दूसरे मर्द से हँसना-खेलना वाक़ई लुच्चापन है। उसे किसी तरह मुआफ़ भी नहीं किया जा सकता !'

श्रीमतीजी को रितिया का घर में रहना भयंकर पाप जान पड़ने लगा। उन्हें शान्त रखने के लिए रितिया को निकाल ही देना पड़ा।

भोला के बारे में माँ से पूछे बिना कुछ किया नहीं जा सकता था। श्रीमतीजी को उस पर उतना क्रोध भी न था। वह आखिर ठहरा मर्द ! वह हम लोगों को खिदमतगार के बिना निस्सहाय छोड़ खुद ही भाग गया।

× × ×

सप्ताह भर बाद और मुसीबत आई भोला और रितिया काठगोदाम में पकड़े गये। उन्हें रानीखेत वापस लाया गया। पुलिस के सम्मन आये कि हम अदालत में गवाही दें, रितिया किसकी औरत है ?

रितिया के बूढ़े अपाहिज मर्द बिर्जू का दावा था कि वह उसकी औरत है और रितिया काठगोदाम में बयान दे आई थी कि वह भोला की औरत है।

रितिया पर श्रीमतीजी के क्रोध का ठिकाना न था। उसकी वजह से हमारी इतनी बेइज़्ज़ती हुई कि हमारे पास अदालत में गवाही देने के लिये पुलिस के सम्मन आये। मुसीबत खुद मुझे भी कम महसूस नहीं हुई। वजह यह थी कि खुदा को हाज़िर-नाज़िर जान इस बात का जवाब देना था कि रितिया बूढ़े बिर्जू की औरत है, जिसे कि उसके माँ-बाप ने सौंप दिया था या भोला की; जिसकी कि वह खुद बनकर रहना चाहती है ?

अदालत की नज़र में सच क्या है, यह तो जानता था परन्तु खुदा की नज़र में सच क्या है ? उसके यहाँ बिर्जू की बिरादरी की इच्छा से फैसला होगा या रितिया की ? अदालत के सामने गवाही देने की फ़िक्र में बार-बार ख़याल आता था 'ऐ खुदा, जैसे तूने मर्द की जायदाद की दूसरी चीज़ों के मन में उनकी अपनी इच्छा का कोई सवाल नहीं रखा वैसे ही औरत के मन में भी उसकी अपनी इच्छा का कोई सवाल न होना चाहिये था।'

अचानक श्रीमतीजी ने आकर टोक दिया—'बैठे-बैठे क्या सोच रहे हो?' जो सोच रहा था, वह कह दिया। वे बिगड़ उठीं—'यह क्या पाप की बातें तुम सोचा करते हो!'

आगे बहस करना उचित न था। स्त्रियों की स्वतंत्रता और समानता के अधिकार का प्रश्न उठ खड़ा होता, खून का दबाव बढ़ने की आशंका हो जाती।

---

१ ३

# आशा

जवान मर्द चाहे जैसा भला और सदाचारी हो, बीबी या माँ-बहिन उसके साथ न हों तो उसकी नेकचलनी का भरोसा नहीं किया जा सकता; गली-मोहल्ले में उसे मकान किराये पर नहीं मिल सकता। प्रो० हरबंसलाल भी स्त्री के रूप में नेकचलनी की जमानत न होने के कारण इस मुसीबत में था। पंजाबी होने के नाते एक पंजाबी परिवार में दो कमरे किराये पर उसे मिल गये। एक नौकर रख वह वहाँ रहता था।

भाग्य की बात, पंजाबी मित्र की बदली होगयी। वे अपना परिवार ले बनारस चले गये। बड़े से मकान का सब किराया अकेले प्रो० लाल के सिर पड़ गया। यदि मकान छोड़दे तो दूसरा मिलना कठिन। इन दिनों खास मुसीबत यह थी कि बर्मा में जापानियों के चढ़ आनेके कारण हज़ारों की संख्या में लोग पूर्वी प्रान्तों से चले आरहे थे। इन लोगों की मेहरबानी से जहाँ ईंधन, तरकारी और दूध मँहगा होगया वहाँ मकानों के किराये भी बढ़ गये। ऐसी हालत में मकान बदलना आसान काम न था।

लाल ने चिट्ठी लिखने के पैड का गत्ता फाड़ लाल पेंसिल से उस

पर लिखा 'रूम्स टूलेट' और खिड़की की छड़ से सड़क पर लटका दिया। चौथे पहर वह कॉलिज से लौट बैठा ही था कि नाक की नोक पर चश्मा टिकाये, कंधे पर शाल, दाँये हाथ में छड़ी और बाँये हाथ में धोती का छोर थामे एक भले मानस बंगाली सज्जन ने खाली कमरे देखने की इच्छा प्रकट की।

लाल ने समझा मकान महाशय को पसन्द है। अपने हिस्से का भी कुछ किराया उन पर लाद, मकान का बड़ा भाग किराये पर दे दिया। ऐसा करना कुछ अच्छा नहीं जंचा परन्तु पन्द्रह दिन का किराया उसे भी तो फालतू देना ही पड़ा था।

बंगाली परिवार आ बसा। वृद्ध मोशाय के साथ बुढ्ढा पत्नी थी। जिनके सिर पर सुहाग चिह्न, सिन्दूर की लाल सड़क, शायद आयु के हिसाब से चौड़ी होती चली गयी थी। नारियल के तेल से चिकने, उनके अधपके काले-सफ़ेद केशों में सिन्दूर का महत्व ही सब से अधिक था। साथ में थी एक बीस-बाइस वर्ष की युवती। बहुत संयत भाव से आँखें झुकाये चलने वाली; कुछ दबी हुई सी। माँ की भाँति उसके सिर पर सिन्दूर की लाल झण्डी नहीं चमकती थी जिसका अर्थ होता है—इधर रास्ता बन्द है। बुढ़ापे के सुहाग से युवती के वैराग्य की तुलना कर लाल के मन में उसके लिये पहिले दिन ही सहानुभूति का उछ्वास अनुभव हुआ।

इस कमरे से उस कमरे, रसोई घर और गुसलखाने में आती-जाती वह लाल को दिखाई पड़ती। लाल ने देखा, उस की आँखें बड़ी-बड़ी हैं; स्थान देखने के लिये फैली हुईसी। सामने पड़ जाने पर वह एक बार आँख उठा देख भर लेती, कौन आ रहा है? फिर आँखें झुक जातीं।

लाल की आँखें युवती पर टिकसी जातीं। रंग उसका पंजाबी लड़कियोंसा गोरा नहीं, गेहुआँ था। जिसे बंगला में कहते हैं, फर्सा; केले के नये पत्ते जैसा रंग। चेहरा ज़रा लम्बा। नाक, उभरे हुये माथे

के नीचे उठी हुई और सीधी। ओंठ पतले और छोटे, प्रायः बन्द। जान पड़ता था, यदि वे खुल जाँय तो अमृत बरस पड़े, परन्तु वे रहते थे बन्द ही। माँ-बाप की किसी बात पर वह कभी मुस्करा देती तो मन होता, उसकी यह मुस्कान बनी रहे। गर्दन के पीछे जूड़ा, खूब बड़ा और भारी। बालों के खुल जाने पर वे लहराते हुये घुटनों तक लटक जाते, जैसे काले रंग की पहाड़ी नदी उमड़ पड़ी हो। शरीर की गठन में जहाँ जितना उठाव होना चाहिये उससे कम या अधिक कहीं नहीं। माता-पिता उसे प्रमिला कह कर पुकारते थे।

सुबह लाल अपने कमरे में खिड़की के सामने बैठे हजामत करता था। उस समय यदि माँ या बाप की पुकार के उत्तर में प्रमिला सामने जंगले पर निकल आये तो सेफ़्टीरेज़र लाल के हाथ में ही रह जाता। वह जंगले की ओर ताकने लगता। यह सब करते हुये लाल को संकोच भी कम न होता।

कॉलिज में प्रोफ़ेसर होने के नाते उसे अपनी स्थिति का ख़याल था। उससे अधिक इस बात का विचार कि जो बात ठीक नहीं, उसे करने से स्वयं ही लज्जा होनी चाहिये। फिर भी आँखें उधर चली जातीं। वह मन को समझा लेता, किसी दूसरे का कुछ नुकसान वह नहीं कर रहा। अपनी आँखों पर उस का अधिकार है, चाहे जिस वस्तु को देखे या न देखे। परन्तु प्रमिला से आखेंचार होजाने पर जब लड़की की भयभीत दृष्टि सिमिट कर झुक जाती, वह सोचने लगता, क्यों वह बेचारी को दुखी करता है? अपने सुख से प्रमिला को दुखी होते देख उसे उदासी अनुभव होती। कभी उसे अपनी ओर देखते देख वह उत्साहित भी हो जाता।

× × ×

प्रमिला की नज़र लाल पर पड़ती। वह भी देखती कि युवा पुरुष है। पुरुष का पौरुष उसके स्वस्थ शरीर में है। चेहरे पर सुसंस्कृति की

सौम्यता भी है। देखने में भला मालूम होता है। देख कर एक संतोष सा होता परन्तु लाल के अपनी ओर देखने पर आँखें झुक जातीं।

वह समझती, उसे आड़ में हो जाना चाहिये। वह कुछ लज्जित सी हो जाती परन्तु दुखी नहीं। वह चाहती, लाल बेशक उसे देखे परन्तु किसी को मालूम न हो, स्वयं उसे भी मालूम न हो। वह बालों को यत्न से बाँधती और अपनी सादी साड़ी को सुलझा कर सतर्कता से रखती, खास कर लाल की खिड़की के सामने से आते जाते समय। उसे मालूम था, सुबह दस बजे से पहले और शाम को चार बजे के बाद लाल कमरे में ही रहता है। उस समय उसकी दृष्टि उधर घूम जाती।

प्रमिला पूर्वी बंगाल की सुशिक्षिता और सुसंस्कृता युवती थी। स्कूल में अंग्रेज़ी न पढ़ कर भी उसने शिक्षा पाई थी। जीवन की पुस्तक के भी कुछ पन्ने उसने पढ़े थे। उसके कुलीन पिता कठिनता से दो कन्याओं के विवाह का कर्तव्य पूरा कर तीसरी पुत्री के विवाह की चिन्ता लिये थे। प्रमिला ने विवाहित स्त्री पुरुषों का जीवन अपने परिवार और पड़ोस में देखा था। उसकी कल्पना और भाव सजग थे। उसने संसार और मनुष्य को अपनी बंगला भाषा के ज़रिये जाना था। अपने भविष्य जीवन और दूर फैले हुये संसार की कल्पना भी उसने उसी भाषा में की थी। अपनी भाषा की सीमा के संसार से निकल उस ने देखा, अभ्यास और भाषा की अदृश्य सीमा से परे भी एक संसार है। लाल उसी संसार की एक अत्यन्त आकर्षक वस्तु है। अपनी पहुँच की सीमा से परे वह उसे देख पाती है। कभी उसका स्वर भी कानों में गूंज जाता है पर है वह उसकी सीमा के बाहर। एक नदी के इस किनारे वह स्वयं है दूसरे किनारे है लाल। उसका मन चाहता, नदी की यह बाधा दूर हो जाय। इस संसार में आना-जाना सुगम हो जाये।

एक दिन लाल गुसलख़ाने से नहाकर निकल रहा था। भीगे बाल माथे पर छिटक आये थे। दोनो हाथों में साबुन, तेल, टुथ-ब्रश

लिये और कंधे पर तौलिया डाले। सिर झुकाये वह अपने कमरे के ज़ीने की ओर जा रहा था। रसोई की ओर से आती हुई प्रमिला से टक्कर लग गयी। दोनों ही सिकुड़ कर सहसा पीछे हट गये। उस समय लाल के मुख से केवल दो शब्द अंग्रेजी में निकल पाये—'वैरी सौरी ( खेद है........ ) खुले हुये केशों में प्रमिला का गेहुआँ चेहरा बिलकुल सुर्ख हो गया—हाय यह क्या हुआ? एक पल के मामूली से हिस्से में ही यह सब हो गया। परन्तु उसके प्रभाव से दोनों के शरीर दिन भर झनझनाते रहे, कल्पना क्षुब्ध होती रही।

लाल दिन भर सोचता रहा, जो कुछ भी हुआ उसमें उसका अपराध कुछ भी न था फिर प्रमिला इस बात से नाराज़ क्यों हुई होगी?.... उसे जान पड़ा, प्रमिला के शरीर के स्पर्श में एक अद्भुत सा संवेदन था।....क्या प्रमिला को भी ऐसा ही अनुभव हुआ होगा?....शायद वह पहले की अपेक्षा अब और भी अधिक लज्जा अनुभव करे?

उसका मन चाहता, वह साहस कर प्रमिला के सामने जा खड़ा हो। उसके दोनों हाथ अपने हाथों में ले कह दे—मैं तुम्हें देखना चाहता हूँ। तब कल्पना में ही उसे दिखाई देने लगता, प्रमिला उसके दुस्साहस से भयभीत हो ऐसे सिकुड़ गयी है जैसे बरसात की सीलन में चला जाता हुआ केंचुआ किसी वस्तु के छू जाने से सिमिट जाता है। जो भी हो, वह निश्चय कर लेना चाहता था प्रमिला का उसके प्रति क्या भाव है?

एक कागज़ पर दो पंक्तियाँ लिख उसने अपनी सफ़ाई देने की आवश्यकता समझी। पर वह लिखे तो किस भाषा में? बंगला वह जानता नहीं। हिन्दी प्रमिला शायद ही जानती हो? अंग्रेज़ी भी वह जानती है या नहीं? क्या किसी बंगाली परिचित से लिखा लाये? वह केवल इतना लिखना चाहता था—'आशा है आप की दृष्टि में मैं अपराधी नहीं हूँ।'

स्नान के पश्चात् जंगले पर टक्कर लग जाना ऐसी भयंकर बात न थी। वह थी आकस्मिक घटना। अपराध हो सकता है, उसके प्रति दृष्टि में अनुराग प्रकट करना। किसी युवती या नारी के प्रति पुरुष का अनुराग प्रकट करना नारी का अपमान है ?........क्यों ?

× × ×

रविवार के दिन लाल अपनी खिड़की के सामने बैठा एक पुस्तक पढ़ने की चेष्टा कर रहा था पर मन उचट जाता। उसकी दृष्टि बार-बार भटक कर प्रमिला के कमरे के दरवाज़े की ओर चली जाती। दो पंक्तियाँ लिख अपने मन की दुविधा दूर करने की इच्छा बार-बार जाग उठती।

सड़क पार सामने के मकान की मुंडेर पर सफ़ेद कबूतर का जोड़ा आ बैठा। कबूतरी लाल मोती जैसी अपनी नन्हीं-नन्हीं आँखें मूँदे, मुंडेर से अपने शरीर को चिपकाये, किसी बोझ की आशंका और प्रतीक्षा से नीचे दबी जा रही थी। कबूतर रोयें फूली हुई गर्दन को ऊपर उठा कबूतरी को अपनी छाया में ले लेना चाहता था। आवेश से फटते अपने सीने के अत्यन्त समीप लाल को प्रमिला का लज्जा-आतुर मुख और कातर आँखें दिखाई देने लगीं जिन्हें वह आलिंगन के आश्रय में ले लेने के लिये व्याकुल हो उठा। परन्तु वह भाषा नहीं जिससे वह प्रमिला को पुकार सके। यदि लाल और प्रमिला कबूतर कबूतरी होते, क्या भाषा की सीमायें उन्हें यों दूर-दूर किये रहतीं ? क्यों नहीं प्रमिला कबूतरी बन उसके सीने से आ लगती। वही क्यों नहीं उसे बुला लेता....उसके पास चला जाता ! मनुष्य होकर वह निस्सहाय की तरह केवल आशंका से उस ओर देख भर सकता है।

छज्जे से आवाज़ आयी। प्रमिला नीचे आंगन में काम करती माँ से कुछ कह रही थी। लाल की दृष्टि उस ओर गई। प्रमिला भीगे केश पीठ पर फैलाये, चटाई बग़ल में थामे अपनी ओर की छत पर धूप में चली जा रही है।

प्रमिला यदि ऊपर की छत पर खड़ी रहे तो लाल से आँखें चार हो सकती थीं। वह ऊपर आयी। उसने देख लिया, लाल देख रहा है। अब खड़ा रहना धृष्टता थी। चटाई बिछा वह ईटों के जंगले की आड़ में बैठ गयी। वहाँ से वह लाल को देख सकती थी परन्तु लाल को केवल उसका आभास मात्र मिल सकता था। लाल और भी व्याकुल हो उठा। काग़ज़ के टुकड़े पर उसने लिखा—'आशा है आपकी दृष्टि में मैं अपराधी नहीं हूँ?' हिन्दी में लिखने के बाद उसने वही लाइन फिर अंग्रेज़ी में लिखी। वह दुस्साहस पर तुला हुआ था। एक कंकड़ लपेट उसने पुड़िया बनाई और प्रमिला के पास छत पर फेंक दी। उसे मालूम हो गया, पर्चा प्रमिला ने उठा लिया। कुछ देर बाद आहट सुनाई दी प्रमिला के ज़ीना उतर नीचे आने और माँ को पुकारने की।

लाल के मन में आशंका सी उठी; क्या उसके अनाचार की शिकायत माँ से करने के लिये ही प्रमिला नीचे आयी है? परन्तु उसकी स्वाभाविक मुस्कराहट से वह भय दूर हो गया। दूसरे क्षण एक हाथ में कंघी लिये और दूसरा हाथ साड़ी के आँचल में छिपाये प्रमिला छत पर लौट गयी।

लाल धक-धक करते हृदय से प्रतीक्षा कर रहा था। प्रायः आधे घण्टे बाद उसने देखा, छत की मुण्डेर पर प्रमिला ने एक काग़ज़ कंकर के नीचे दबा दिया। कंघी से सँवारे अपने केश पीठ पर फैलाये और चटाई सम्भाले वह नीचे चली जा रही है। लाल लपक कर दूसरी छत पर गया। पर्चा उठा उसने देखा, उसकी दो पंक्तियों के उत्तर में इस काग़ज़ पर पाँच पंक्तियाँ लिखी थीं। अक्षर छोटे-छोटे, गोल-गोल, बहुत सुन्दर परन्तु बंगला भाषा में। बेबसी का एक गहरा साँस ले वह अपनी जगह पर आ बैठा। क्या करे? क्या इन पंक्तियों को किसी बंगाली परिचित से पढ़ाकर सुने? परन्तु ऐसा करने से उसके विरुद्ध शंका

और सन्देह का जाल फैल जायगा। जानता था, बंगालियों में प्रान्तीयता कम नहीं होती।

बंगला की पहली पोथी ला अक्षर पहचानने का प्रयास भी व्यर्थ हुआ। छापे के अक्षर लिखावट में आने पर क्या से क्या हो जाते हैं ? अपने लिखे पुर्ज़े के उत्तर में लाल केवल इतना समझ पाया कि उसका आकर्षण व्यर्थ और तिरस्कृत नहीं। उसे क्या मिल सकता है, यह जानने की इच्छा उसे बावला किये दे रही थी पर उपाय न था। दिन में अनेक बार वह पुर्ज़ा उसके हाथ में आ जाता और वह मन मसोस रह जाता।

घोष बाबू अपना समय काटने के लिये नारियल की गुड़गुड़ी लिये लाल की बैठक में आ बैठते। उनकी बातों में कोई रुची लाल को न होती। वे नित्य आकर सुनाते, मछली कितनी कठिनता से मिल पाती है। लाल को उनकी बात पर विस्मय और आश्चर्य प्रकट करना ही पड़ता ताकि आत्मीयता बनी रहे। यह सब बातें होतीं अंग्रेज़ी में या रेलवे स्टेशन पर बोली जाने वाली हिन्दुस्तानी में। इस आत्मीयता की छाया घोष बाबू लाल की बैठक में ही सीमित रखना चाहते थे ; अपने कमरों की ओर बढ़ने नहीं देते। लाल को यदि कहीं बाहर न जाना हो तो घोष बाबू दोनों पाँव कुर्सी पर टिका, उंकड़ू बैठे, दिन भर अनेक संगत-असंगत विषयों का चर्चा कर सकते थे परन्तु अपने भीतर के कमरों की ओर लाल को बुलाने के लिये वे कभी तैयार न हुये जहाँ उनकी वृद्धा स्त्री और युवा पुत्री सुरक्षित थीं।

भय से प्राण बचाने के लिये वे अपने साँवले सलोने और सीले देश की ममता छोड़ पश्चिम भाग आये थे। वह भय अब उन्हें व्यर्थ जान पड़ने लगा। प्रतिदिन वे लौट जाने की चर्चा करते। संकट यह था कि सरकार के प्रति असंतोष प्रकट करने के लिये जनता ने बावली हो स्वयं अपने आने-जाने के साधनों, रेलों और पुलों को तोड़ डाला। इससे पूर्वी-बंगाल तक लम्बा सफ़र करने की सुविधा न थी। गाड़ी में

भीड़ बहुत रहती, टिकट मिलता नहीं। घोष बाबू से लाल यह सब सुनता और उसका मन विकल हो उठता—हाय, क्या प्रमिला उससे दो बातें किये बिना, उसे आग में सुलगता रहने के लिये छोड़ चला देगी ? परन्तु वह करे क्या ?

× × ×

बंगाल लौट चलने के लिये माता पिता का उत्साह देख प्रमिला का मन डूबने लगता। लाल की खिड़की की ओर वह सतृष्ण दृष्टि से देखती परन्तु बेबस थी। माँ को रसोई में उलझे रहने और पिता के सौदा सुलफ़ लेने जाने पर वह साहस कर लाल की खिड़की के सामने जा खड़ी होती। सुबह जाड़े की धूप सेंकने के लिये कोई पत्रिका, कोई सिलाई का काम या बुनाई ले सबसे ऊपर की छत पर जा पहुँचती। यदि लाल साहस करे तो उसके पास चुपचाप पहुँच सकता था। लाल की दृष्टि पड़ने पर वह आड़ में छिप नहीं जाती। सिर झुकाये वैसे ही खड़ी रहती बल्कि कभी आँख के कोने से देख भी लेती। लाल की बेचैनी को वह समीप आने की पुकार समझ बाहों में सिमट जाने के लिये तैयार थी परन्तु लाल की बाहें उसे सम्भालने के लिये आगे बढ़ न पातीं।

प्रमिला को जान पड़ता, उसके लिये कहीं कोई आसरा या स्थान नहीं। उसका अपना अस्तित्व है ज़रूर पर संसार के इतने बड़े घर में उसे रखने के लिये किसी बक्स, सन्दूक, आलमारी या ताक में कोई जगह नहीं। उसे रोना आ जाता और इच्छा होती वह मर जाय।

लाल अपने अत्यन्त समीप से इधर उधर आती जाती प्रमिला के शरीर के शैथिल्य को अनुभव करता। प्रमिला के शरीर को स्पर्श किये वायु की गंध से उसके शरीर की शिरायें उग्र हो उठतीं।

मन की व्याकुलता से टूटे फूटे दो-एक शब्द उसने प्रमिला को कहे। उत्तर में उसने केवल सिर भर झुका दिया। इसका अर्थ वह क्या समझे ? और प्रमिला ही उसके शब्दों का क्या अर्थ समझी होगी ?

मुण्डेर पर गरदन फुलाये कबूतर का आश्रय पाने के लिये जैसे कबूतरी समीप आ दुबक जाती है वैसे ही प्रमिला भी उसके सामीप्य से शिथिल हो जाती परन्तु लाल तो कबूतर नहीं ? उसका भाव केवल हाथ-पैर के हिलने से नहीं, शब्दों में प्रकट होना चाहता है। उन शब्दों की प्रमिला तक पहुँच नहीं। इसीसे लाल निश्फल रह जाता है।

× × ×

उस दिन शाम की गाड़ी से घोष बाबू बंगाल चले जाने के लिये सुबह से बिस्तर और सामान बाँध रहे थे। कुछ-कुछ मिनट बाद वे लाल के कमरे में आते और प्रसन्नता तथा उत्साह से चमकती, बुढ़ापे के कारण पीली पड़ गयी आँखें झपक कह जाते, अब तो जाते ही हैं। इतने दिन आपकी संगति हुई........।' लाल मुस्करा देता परन्तु हृदय कट कर रह जाता।

दस बजे वह कॉलिज गया ज़रूर परन्तु हृदय उमड़ उठता, आज प्रमिला छिन जायगी। वह कभी उसे देख न सकेगा। मन और शरीर की बेचैनी के कारण वह मकान लौट आया। मकान के पूरब की ओर से आते हुये उसने देखा, कुछ ही दूर आगे एक इक्के पर घोष बाबू अपनी पत्नी को लिये बाज़ार की ओर चले जा रहे हैं।

घर के भीतर आ उसने नौकर को किसी काम से बाहर भेज दिया। प्रमिला दरवाज़े की चौखट में सिर झुकाये उसकी आवाज़ सुन रही थी। उसने देखा और साहस कर नीचे जा पहुँचा, बिलकुल प्रमिला के पास। आते ही उसने कहा—'आज आप चली जा रही हैं, एक भी बात किये बिना ?'

लाल की बाहों के आश्रय की उत्कट प्रतीक्षा में प्रमिला का रोम-रोम काँप रहा था। सम्पूर्ण साहस एकत्र कर सिर झुकाये उसने रूँधे हुये गले से उत्तर दिया—'आमी शॉरब भाबे अनुगत !'

कुछ बंगला उच्चारण, कुछ गले में आँसू भरे रहने से, कुछ स्वर

के धीमे होने के कारण लाल कुछ भी समझ न सका। एक प्रबल आकर्षण से खिंचा वह खड़ा रहा। उचित-अनुचित की आशंका, उसके थरथराते शरीर को जड़ किये रही। प्रमिला के केशों और शरीर की गंध से अधिक-अधिक उत्तेजित हो वह आगे बढ़ने और पीछे हटने में असमर्थ खड़ा रहा। प्रमिला भी आँसू बहाती सिर झुकाये, निशब्द खड़ी रही।

लाल व्याकुल हो रहा था, साहस कर वह कबूतर की भाँति गर्दन फुला आगे क्यों नहीं बढ़ सकता? परन्तु वह कबूतर नहीं मनुष्य था और प्रमिला भी कबूतरी नहीं मानवी थी परन्तु मनुष्य के सबसे बड़े साधन, भाषा से हीन!

गली में खुलने वाले मकान के दरवाज़े पर साँकल खटकी और घोष बाबू की पुकार सुनाई दी। अपनी अवस्था से सचेत हो लाल मुख में भरे कड़वेपन को निगलने की चेष्टा करता पंजों के बल अपने ज़ीने की ओर चला गया। प्रमिला आँखों से बह गये आँसुओं को आँचल से पोंछती और गले में भरे उद्वेग का घूँट भरती सांकल खोलने दरवाज़े की ओर बढ़ गई।

संध्या समय लाल घोष परिवार को रेल पर बैठाने भी गया। उस भारी भीड़ में, घोष बाबू लग-भग चलती गाड़ी में स्वयं पहले भीतर जा पत्नी और बेटी के हाथ थाम भीतर खींच रहे थे। लाल ओंठ दबाये देखता रहा। गाड़ी में पैर रखते समय भी दृष्टि लाल की ओर रहने के कारण प्रमिला लड़खड़ा गयी। 'एई जे शावधान'—घोष बाबू ने ललकारा और उसे ऊपर खींच सम्भाल लिया।

लाल हृदय की निराशा से दम साधे, कबूतर की तरह गर्दन ऊँची किये प्लेटफार्म से लौट चला। उसकी छाया में दुबकने के लिये आतुर कबूतरी छिन चुकी थी। उसे पा सकने के लिये भाषा का साधन नहीं था।

---

१४

## परदा

चौधरी पीरबख्श के दादा चुंगी के महकमे में दारोगा थे। आमदनी अच्छी थी। एक छोटा पर पक्का मकान भी उन्होंने बनवा लिया। लड़कों को पूरी तालीम दी। दोनो लड़के एण्ट्रेन्स पास कर रेलवाई में और डाकखाने में बाबू हो गये। चौधरी साहब की ज़िन्दगी में लड़कों के ब्याह और बालबच्चे भी हुये लेकिन ओहदे में खास तरक्की न हुई; वही तीस और चालीस रुपये माहवार का दर्जा।

अपने ज़माने की याद कर चौधरी साहब कहते—'वो भी क्या वक्त थे। लोग मिडल पास कर डिप्टी-कलक्टरी करते थे और आजकल की तालीम है कि एण्ट्रेन्स तक इंग्रेजी पढ़कर लड़के तीस-चालीस से आगे नहीं बढ़ पाते।' बेटों को ऊँचे ओहदे पर देखने का अरमान लिये ही उन्होंने आँखें मूँद लीं।

इंशाअल्ला, चौधरी साहब के कुनबे में बरकत हुई। चौधरी फज़ल-कुर्बान रेलवाई में काम करते थे। अल्लाह ने उन्हें चार बेटे और तीन बेटियाँ दीं। चौधरी इलाहीबख्श डाकखाने में थे। उन्हें भी अल्लाह ने चार बेटे और दो लड़कियाँ बख्शीं।

चौधरी खान्दान अपने मकान को हवेली पुकारता था। नाम बड़ा

देने पर भी जगह तंग ही रही। दारोगा साहब के ज़माने में ज़नाना भीतर था और बाहर बैठक में वे मोंढे पर बैठ नैचा गुड़गुड़ाया करते। जगह की तंगी की वजह से उनके बाद बैठक भी ज़नाने में शामिल होगई और घर की ड्योढ़ी पर पर्दा लटक गया। बैठक न रहने पर भी घर की इज्ज़त का ख़याल था। इसलिये पर्दा बोरी के टाट का नहीं बढ़िया किस्म का रहता।

ज़ाहिरा दोनों भाइयों के बालबच्चे एक ही मकान में रहते पर भीतर सब अलग-अलग था। ड्योढ़ी का पर्दा कौन भाई लावे? इस समस्या का हल यह हुआ कि दारोगा साहब के ज़माने की पलंग की रंगीन दरियाँ एक के बाद एक ड्योढ़ी में लटकाई जाने लगीं।

तीसरी पीढ़ी के ब्याह-शादी होने लगे। आख़िर चौधरी खान्दान की औलाद को हवेली छोड़ दूसरी जगहें तलाश करनी पड़ीं। चौधरी इलाहीबख्श के बड़े साहबज़ादे एण्ट्रेन्स पास कर डाकख़ाने में बीस रुपये की क्लर्की पागये। दूसरे साहबज़ादे मिडिल पास कर हस्पताल में कम्पा-उण्डर बनगये। ज्यों-ज्यों ज़माना गुज़रता जाता, तालीम और नौकरी दोनों ही मुश्किल होती जातीं। तीसरे बेटे होनहार थे। उन्होंने वज़ीफ़ा पाया। जैसे-तैसे मिडिल कर स्कूल में मुदर्रिस हो देहात चले गये।

चौथे लड़के पीरबख्श प्राइमरी से आगे न बढ़ सके। आज कल की तालीम भी बाप पर खर्च के बोझ के सिवा और है क्या? स्कूल की फ़ीस हर महीने और किताबों, कापियों और नक्शों के लिये रुपये ही रुपये!

चौधरी पीरबख्श का भी ब्याह होगया। मौला के करम से बीबी की गोद भी जल्दी ही भरी। पीरबख्श ने रोज़गार के तौर पर, खान्दान की इज्ज़त के खयाल से, एक तेल की मिल में मुंशीगिरी कर ली। तालीम ज़्यादा नहीं तो क्या सफ़ेद पोश खान्दान की इज्ज़त का पास तो था। मज़दूरी और दस्तकारी उनके करने की चीज़ें न थीं। चौकी पर बैठते। कलम-दावात का काम था।

बारह रुपया महीना अधिक नहीं होता। चौधरी पीरबख्श को मकान सितवा की कच्ची बस्ती में लेना पड़ा। मकान का किराया दो रुपया था। आसपास ग़रीब और कमीन लोगों की बस्ती थी। कच्ची गली के बीचों बीच, गली के मुहाने पर लगे कमेटी के नल से टपकते पानी की काली धार बहती रहती। जिसके किनारे घास उग आई थी। नाली पर मच्छरों और मक्खियों के बादल उमड़ते रहते। सामने रमजानी धोबी की भट्टी थी। जिसमें से धुआँ और सज्जी मिले उबले कपड़ों की गंध उड़ती रहती। दाईं ओर न्यागरा बनानेवाले बीकानेरी मोचियों के घर थे। बाईं ओर वर्कशाप में काम करने वाले कुली रहते।

इस सब बस्ती में चौधरी पीरबख्श ही पढ़े लिखे सफ़ेद पोश थे। सिर्फ़ उनके ही घर ड्योढ़ी पर पर्दा था। सब लोग उन्हें चौधरी जी मुंशीजी कहकर सलाम करते। उन के घर की औरतों को कभी किसी ने गली में नहीं देखा। ईशाअल्ला घर में औलाद थीं तो वह भी लड़कियाँ। बच्चियाँ चार-पाँच बरस की उम्र तक किसी काम काज से बाहर निकलतीं और फिर घर की आबरू के खयाल से उनका बाहर निकलना मुनासिब न था। पीरबख्श खुद ही मुस्कराते हुए सुबह-शाम कमेटी के नल से घड़े भर लाते।

चौधरी की तनखाह पन्द्रह बरस में बारह से अठारह हो गई। ख़ुदा की बरकत होती है तो रुपये पैसे की शक्ल में नहीं, आल-औलाद की शक्ल में होती है। पन्द्रह बरस में पाँच बच्चे हुए। पहले तीन लड़कियाँ और बाद में दो लड़के।

दूसरी लड़की होने को थी तो पीरबख्श की वाल्दा मदद के लिये आईं। वालिद साहब का इंतकाल हो चुका था। दूसरा कोई भाई वाल्दा की फ़िक्र करने आया नहीं। वे छोटे लड़के के यहाँ ही रहने लगीं।

जहाँ बाल-बच्चे और घर-बार होता है सौ किस्म की झंझट होती

ही है। कभी बच्चे को तकलीफ़ है तो कभी जच्चा को। ऐसे वक्त में क़र्ज़ की ज़रूरत कैसे न हो? घर बार है तो क़र्ज़ भी होगा ही।

मिल की नौकरी का क़ायदा पक्का होता है। हर महीने की सात तारीख को गिनकर तनखाह मिल जाती है। पेशगी से मालिक को चिढ़ है। कभी बहुत ज़रूरत पर ही मेहरबानी करते। ज़रूरत पड़ने पर चौधरी घर की कोई छोटी-मोटी चीज़ गिरवीं रख उधार ले आते। गिरवीं रखने से रुपये के बारह आने ही मिलते। ब्याज मिलाकर सोलह आने हो जाते और फिर चीज़ के घर लौट आने की सम्भावना न रहती।

मुहल्ले में चौधरी पीरबक्श की इज्जत थी। उस इज्जत का आधार था, घर के दरवाजे पर लटका परदा। भीतर जो हो, पर्दा सालम रहता। कभी बच्चों की खींच-खाँच या बे दरद हवा के झोकों से उसमें छेद हो जाते तो परदे की आड़ से हाथ सुई धागा ले उसकी मरम्मत कर देते।

दिनों का खेल! मकान की ड्योढ़ी के किवाड़ गलते-गलते बिल-कुल गल गये। कई दफ़े कसे जाने से पेच टूट गये और सूराख ढीले पड़ गये। मकान मालिक सुरजू पाण्डे को उसकी फ़िक्र न थी। चौधरी कभी जाकर कहते-सुनते तो उत्तर मिलता—'कौन बड़ी बड़ी रक़म थमा देते हो? दो रुपल्ली किराया और वह भी छः-छः महीने का बकाया। जानते हो लकड़ी का क्या भाव है? न हो मकान छोड़ जाओ!' आखिर किवाड़ गिर गये। रात में चौधरी उन्हें जैसे तैसे चौखट से टिका देते। रात भर दहशत रहती, अगर कोई चोर आजाय!

मुहल्ले में सफ़ेद पोशी और इज्ज़त होने पर भी चोर के लिये घर में कुछ न था। शायद एक भी साबित कपड़ा या बरतन ले जाने के लिये चोर को न मिलता; पर चोर तो चोर है? छिनने के लिये कुछ न हो तो भी चोर का डर तो होता ही है। वह चोर जो ठहरा।

चोर से ज़्यादा फ़िक्र थी आबरू की। किवाड़ न रहने पर पर्दा ही

आबरू का रखवारा था। वह परदा भी तार-तार होते-होते एक रात आँधी में किसी भी हालत से लटकने लायक न रह गया। दूसरे दिन सुबह घर की एकमात्र पुश्तैनी चीज़ दरी दरवाजे पर लटक गई। मुहल्ले वालों ने देखा और चौधरी को सलाह दी :—अरे चौधरी इस ज़माने में दरी यों काहे ख़राब करोगे। बाज़ार से ला टाट का टुकड़ा न लटका दो! पीरबक्श टाट की कीमत मिल आते-जाते कई दफ़े पूछ चुके थे। दो गज़ टाट आठ आने से कम में न मिल सकता था। हँसकर बोले—'होने दो क्या है। हमारे यहाँ पक्की हवेली में भी ड्योढ़ी पर दरी का ही पर्दा रहता था।'

कपड़े की महंगी के इस ज़माने में घर की पाँचों औरतों के शरीर से कपड़े जीर्ण होकर यों गिर रहे थे जैसे पेड़ अपनी छाल बदलते हैं। पर चौधरी साहब की आमदनी से दिन में एक दफ़े किसी तरह आटा पेट भर सकने के इलावा कपड़े की गुंजाइश कहाँ? खुद उन्हें नौकरी पर जाना होता। पायजामे में जब पैबन्द सम्भालने की ताब न रही, मारकीन का एक कुरता-पायजामा ज़रूरी हो गया, पर लाचार थे।

गिरवी रखने के लिये घर में जब कुछ न हो ग़रीब का एकमात्र सहायक है, पंजाबी ख़ान! रहने की जगह भर देखकर ही वह रुपया उधार दे सकता है। दस महीने पहले गोद के लड़के, बर्कत के जन्म के समय पीरबक्श को रुपये की ज़रूरत आपड़ी। कहीं और कोई प्रबन्ध न हो सकने के कारण उन्होंने पंजाबी ख़ान बबरअलीखां से चार रुपये उधार ले लिये।

बबरअलीखाँ का रोज़गार सिलवा के उस कच्चे मुहल्ले में अच्छा-खासा चलता था। बीकानेरी मोची, वर्कशाप के मज़दूर और कभी-कभी रमजानी धोबी सभी बबरमियाँ से कर्ज़ लेते रहते। कई दफ़े चौधरी पीरबक्श ने बबरअली को कर्ज़ और सूद की किश्त न मिलने पर अपने दो-हाथ के डंडे से ऋणी का दरवाज़ा पीटते देखा था, उन्हें

साहूकार और ऋणी में बीच-बचउवल भी करना पड़ा था। ख़ान को वे शैतान समझते थे लेकिन लाचार हो जाने पर उसीकी ही शरण लेनी पड़ी। चार आना रुपया महीना पर चार रुपया कर्ज़ लिया। शरीफ़, खान्दानी, मुसलमीन भाई का ख़याल कर बबरअली ने एक रुपया माहवार की किश्त मान ली। आठ महीने में कर्ज़ अदा होना तै हुआ।

ख़ान की किश्त न दे सकने की हालत में अपने घर के दरवाज़े पर फ़जीहत हो जाने की बात का ख़याल कर चौधरी के रोयें खड़े हो जाते। सात महीने फ़ाका करके भी किसी तरह वे किश्त देते चले गये। लेकिन जब सावन में बर्सात पिछड़ गई और बाजरा भी रुपये का तीन सेर मिलने लगा, किश्त देना सम्भव न रहा। ख़ान सात तारीख़ की शाम को ही आया। चौधरी पीरबख़्श ने ख़ान की दाढ़ी छू और अल्ला की कसम खा, एक महीने की मुआफ़ी चाही। अगले महीने एक का सवा देने का वायदा किया। ख़ान टल गया।

भादों में हालत और भी परेशानी की हो गई। बच्चों की माँ की तबीयत रोज़-रोज़ गिरती ही जा रही थी। खाया-पिया उसके पेट में न ठहरता। पथ्य के लिये उसे गेहूँ की रोटी देना ज़रूरी हो गया। गेहूँ मिलता मुश्किल से और रुपये का सिर्फ़ अढ़ाई सेर। बीमार का जी ठहरा, कभी प्याज़ के टुकड़े या धनिये की खुशबू के लिये ही मचल जाता। कभी पैसे की सौंफ़, अजवायन, काला नमक की ही ज़रूरत हो तो पैसे की कोई चीज़ मिलती ही नहीं। बाज़ार में ताम्बे का नाम ही नहीं रह गया; नाहक इकन्नी निकल जाती। चौधरी को दो रुपये महँगाई भत्ते के भी मिले पर पेशगी लेते-लेते तनख़ाह के दिन केवल चार ही रुपये हिसाब में निकले।

बच्चे पिछले हफ़्ते लगभग फ़ाके से थे। चौधरी कभी गली से दो पैसे की चौराई खरीद लाते, कभी बाजरा उबाल सब लोग कटोरा-

कटोरा भर पी लेते। बड़ी कठिनता से मिले चार रुपयों में से सवा रुपया ख़ान के हाथ में धर देने की हिम्मत चौधरी को न हुई।

मिल से घर लौटते समय वे मण्डी की ओर टहल गये। दो घण्टे बाद जब समझा, ख़ान टल गया होगा, अनाज की गठरी ले वे घर पहुँचे। ख़ान के भय से दिल डूब रहा था लेकिन दूसरी ओर चार भूखे बच्चों, उनकी माँ, दूध न उतर सकने के कारण सूख कर काँटा हो रहे गोद के बच्चे और चलने-फिरने से लाचार अपनी ज़ईफ़ माँ की भूख से बिलबिलाती सूरतें आँखों के सामने नाच जातीं। धड़कते हुए हृदय से वे कहते जाते—'मौला सब देखता है, ख़ैर करेगा।'

सात तारीख़ की शाम को असफ़ल हो ख़ान आठ की सुबह खूब तड़के, चौधरी के मिल चले जाने से पहले ही अपना डण्डा हाथ में लिये, दरवाज़े पर मौजूद था।

रात भर सोच-सोचकर चौधरी ने ख़ान के लिये बयान तैयार किया मिल के मालिक लालाजी चार रोज़ के लिये बाहर गये हैं। उनके दस्तख़त के बिना किसी को भी तनख़ाह नहीं मिल सकी। तनख़ाह मिलते ही वह सवा रुपया हाज़िर करेगा।

माकूल वजह बता देने पर भी ख़ान बहुत देर गुर्राता रहा—'अम वतन छोड़ के परदेस में पड़ा है, ऐसे रुपिया छोड़ देने का वास्ते.... अमारा भी बालबच्चा है। चार रोज़ में रुपिया नहीं देगा तो अम तुमारा........कर देगा।'

पाँचवें दिन रुपया कहाँ से आ जाता! तनख़ाह मिले हफ़्ता भी नहीं हुआ। मालिक ने पेशगी देने से साफ़ इनकार कर दिया। छठे दिन किस्मत से एतवार था। मिल में छुट्टी रहने पर भी चौधरी ख़ान के डर से सुबह ही बाहर निकल गये। जान-पहचान के कई आदमियों के यहाँ गये। इधर-उधर की बात चीतकर वे कहते—'अरे भाई हो तो बीस आने पैसे तो दो-एक रोज़ के लिये देना। ऐसे ही ज़रूरत आ पड़ी है।'

—'श्रमियाँ पैसे कहाँ इस ज़माने में....'—उत्तर मिलता—'पैसे का मोल कौड़ी नहीं रह गया ! हाथ में आने से पहले ही उधार में उठ गया तमाम........!'

दो पहर हो गई। ख़ान आया भी होगा तो इस वक्त तक बैठा नहीं रहेगा, चौधरी ने सोचा और घर की तरफ़ चल दिये। घर पहुँचने पर सुना कि ख़ान आया था और घण्टे भर तक ड्योढ़ी पर लटके दरी के पर्दे को डण्डे से ठेल-ठेलकर गाली देता रहा है। पर्दे की आड़ से बड़ी-बी के बार-बार ख़ुदा की कसम खा यकीन दिलाने पर कि चौधरी बाहर गये हैं, रुपया लेने गये हैं, ख़ान गाली देकर कहता, 'नई बदजात, चोर बीतर में चिपा है ! अम चार गण्टे में पिर आता है। रुपिया लेकर जायगा। रुपिया नई देगा उसका तो खाल उतार कर बाजार में बेच देगा।....हमारा रुपिया क्या अराम का है ?'

चार घण्टे से पहले ही ख़ान की पुकार सुनाई दी—'चोदरी !' पीरबक्श के शरीर में बिजली सी तड़प गई और वह बिलकुल निस्सत्व हो गये ; हाथ-पैर सुन्न और गला खुश्क।

गाली दे परदे को ठेलकर ख़ान के दुबारा पुकारने पर चौधरी का शरीर निर्जीव-प्राय होकर भी निश्चेष्ट न रह सका। वे उठ कर बाहर आ गये। ख़ान आग-बबूला हो रहा था—'पैसा नई देने का वास्ते चिपता है !'........एक से एक चढ़ती हुई तीन गालियाँ एक साथ ख़ान के मुँह से पीरबक्श के पुरखों और पीरों के नाम निकल गईं। इस भयंकर आघात से पीरबक्श का खान्दानी रक्त भड़क उठने के बजाय और भी निर्जीव हो गया। ख़ान के घुटने छू, अपनी मुसीबत बता, वे मुआफ़ी के लिये खुशामद करने लगे।

ख़ान की तेज़ी बढ़ गई। उसके ऊँचे स्वर से पड़ोस के मोची और मज़दूर चौधरी के दरवाज़े के सामने इकट्ठे हो गये। ख़ान क्रोध में डण्डा फटकार कर कह रहा था—'पैसा नहीं देना था, लिया क्यों ?

तनख़ा किदर में जाता ? अरामी अमारा पैसा मारेगा।....अम तुमारा खाल खींच लेगा।....पैसा नई है तो गर पर परदा लटका के शरीफ़-ज़ादा कैसे बनता ?....तुम अमको बीबी का गैना दो, बर्तन दो, कुछ तो भी दो! अम ऐसे नई जायेगा....'।

बिलकुल बेबस और लाचारी में दोनों हाथ उठा, ख़ुदा से ख़ान के लिये दुआ माँग, पीरबक्श ने कसम खाई, एक पैसा भी घर में नहीं बर्तन भी नहीं, कपड़ा भी नहीं। खान चाहे तो बेशक उनकी खाल उतार कर बेचले।

ख़ान और आग हो गया—'अम तुमारा दुआ का क्या करेगा; अम तुमारा खाल का क्या करेगा; उसका तो जूती बी नई बनेगा। तुमारा खाल से तो ये टाट अच्चा.... ...'खान ने ड्योढ़ी पर लटका दरी का परदा झटक लिया। ड्योढ़ी से परदा हटने के साथ ही जैसे चौधरी के जीवन की डोर टूट गई। वह डगमगा कर ज़मीन पर गिर पड़े।

इस दृश्य को देख सकने की ताब चौधरी में न थी परन्तु द्वार पर खड़ी भीड़ ने देखा—घर की औरतें और लड़कियाँ परदे के दूसरी ओर घटती घटना के आतंक से आँगन के बीचों-बीच इकट्ठी हो खड़ी काँप रही थीं। सहसा परदा हट जाने से औरतें ऐसे सिकुड़ गईं जैसे उनके शरीर का वस्त्र खींच लिया गया हो! वह परदा ही तो घर भर की औरतों के शरीर का वस्त्र था। उनके शरीर पर बचे चीथड़े उनके एक तिहाई भाग ढँकने में भी असमर्थ थे.......।

जाहिल भीड़ ने घृणा और शरम से आँखें फेर लीं। उस नग्नता की झलक से ख़ान की कठोरता भी पिघल गई। ग्लानि से थूक, परदे को आँगन में वापिस फेंक, क्रुद्ध निराशा में उसने कहा—'लाहौल बिला.......।' और असफल लौट गया।

भय से चीखकर ओट में हो जाने के लिये भागती हुई औरतों पर दया कर भीड़ छट गई। चौधरी बेसुध पड़े थे। जब उन्हें होश आया,

ड्योढ़ी का परदा आँगन में सामने पड़ा था परन्तु उसे उठाकर फिर से लटका देने का सामर्थ्य उनमें शेष न था। शायद अब उसकी आवश्यकता भी न रही थी।

परदा जिस भावना का अवलम्ब था, वह मर चुकी थी....।

---

१५

## राजा

सूर्यास्त हुये विलम्ब हो चुका था। शतद्रुतट पर भारी बरगद वृक्ष के चारों ओर बसे गंधर्व लोगों के पड़ाव में पशुओं को चराने गये बालक और बालिकायें लौट आये थे। संध्या भोजन के उपक्रम में झोपड़ियों से उठने वाली धुयें की रेखायें भी विलीन हो चुकी थीं। पशु दिन भर घूम-फिर कर उदरस्थ किये घास की जुगाली करने के लिये निश्चिन्त बैठ गये। पक्षी पृथ्वी छोड़, बसेरे के लिये वृक्षों की ऊँची टहनियों पर जा पहुँचे।

व्यवसाय के लिये जनपदों और आश्रमों का चक्कर लगाने गये युवा गन्धर्व और युवती अप्सराओं के लौटने की प्रतीक्षा थी। अति वृद्ध नर और नारियाँ गोद के बच्चों को सम्भाले, विशाल बरगद के नीचे बिछी चटाइयों पर बैठे थे। अल्हड़ किशोर और किशोरियों को संध्या समय कला की शिक्षा और अभ्यास के लिये पुकारा जा रहा था। कोई किशोर मृदंग के बन्धनों को कस रहा था और किशोरियाँ नृत्य के लिये पाँव में घुँघरू बाँध रही थीं।

सुरभि व्यवसाय से लौटते अपने दल से कुछ आगे-आगे, उतावले पदों से, चली आ रही थी। उत्तरासंग (चुनरी) बेपरवाही से सिर पर

टिका था और खाली झोली कंधे पर। पहुँची और कोहनी पर आभूषण पहरे उसकी बाहें, अपनी कोमलता भूल, अन्तरवासक ( लुंगी ) को फट-फटाते द्रुत पदों के साथ, हिलाती चली जा रही थीं। बरगद के नीचे से प्रतीक्षा में लगी आँखों की चिन्ता न कर, कंधे से लटकी खाली झोली उसने चटाई पर फेंक दी। एक अल्हड़ बालिका की गोद में रोती अपनी सन्तान को उसने झपट लिया। कंचुक के बंधन ढीले करती हुई वह एक झोंपड़ी के द्वार की ओर जा रही थी। मन का क्षोभ वश में न रहा। पीछे घूमकर वह बोली—'बच्चा भूख से बिलख रहा है, इतनी समझ नहीं; भावनृत्य और संगीत सीखेंगी....बकरी का थन ही पिला दिया होता। इन्द्र का वज्र पड़े सिर पर........!'

सुरभि के पीछे मृदुला और किंशुक आ रहे थे। उनकी गति और भाव में भी निरुत्साह का शैथिल्य था। घुंघरुओं की पोटली चटाई पर फेंक मृदुला बैठ गई। महावृक्ष के तने के समीप चटाई पर बैठे वृद्ध कुलपति चित्रक से आँखें चुराने के लिये, सिर पर बेपरवाही से रखे उत्तरीय के नीचे हाथ डाल, सिर खुजाने के बहाने उसने गर्दन घुमा ली। कंधे पर लटकी मृदंग को धीमे से चटाई पर टिका दूसरी ओर बैठते हुए किंशुक ने सुरभि के क्षोभ के उत्तर में अपनी बात कही—'भावनृत्य और संगीत को अब परखेंगे वृक्षों के पत्ते और चट्टानें। इन लड़कियों को उँगली से नाक दबा प्राणायाम द्वारा, ब्रह्म-रंध्र से अमृत की बूँदे टपका, क्षुधा निवृत्ति का अभ्यास कराओ!' किंशुक स्वयम दो उँगलियों से नाक थाम, पाल्थी मार बैठ गया।

गले में भरे क्षोभ के आँसू निगल, वृद्ध की ओर देख मृदुला ने कहा—'कल तुमने गाय बाँधने की रस्सी से मेरी पीठ उधेड़ दी। कहते हो, मैं काठ के कुन्दे की तरह डगमगाती हूँ। मुझमें हाव-भाव नहीं, मैं रस नहीं उत्पन्न कर सकती। आज क्या हुआ? आज तो सुरभी भी हमारे साथ थी! नगर के महाशाल ( रईस ) के द्वार पर जहाँ ताम्बे के

कदली स्तम्भों में रजत-पत्र के वन्दनवार लगे रहते हैं, जहाँ चार भट ( सिपाही ) प्रति क्षण भाले लिये खड़े रहते हैं, सुरभी घड़ी भर अपने कदमों से धरती पीटती रही। किंशुक गला फाड़ता रहा। किसी ने आँख उठाकर नहीं देखा। बच्चे घिरने लगे तो एक वृद्ध ने उन्हें फटकार दिया—'माया जाल रच मनुष्यों को अपना दास बनाये रखने वाले देवताओं की पूजा के उपकरणों से भद्रवंश के कुमारों का क्या सम्बन्ध ?' द्वारपालों ने हमें खदेड़ दिया !

'ऐसे खदेड़ दिया जैसे हम उनका खेत चरे ले रहे हों....!'—किंशुक ने घास चरते पशु की भाँति अपना सिर हिलाकर बात पूरी की—'आश्रमो के समीप हमारे पहुँचते ही ऋषि और ब्रह्मचारी मृगचर्म, कमण्डल छोड़ ऐसे भागते हैं जैसे भेड़ों में भेड़िया आ कूदा हो !'—सुरभी की ओर संकेत कर किंशुक कहता गया—'इसका यह प्रसव के डेढ़ मास पश्चात का यौवन........! इसके पहले बालक के प्रसव के बाद नृत्य के लिये यह तपोवनों में जाती तो बल-प्रयोग की आशंका में मुझे वीणा और मृदंग के साथ मुग्दर और कृपाण भी लिये फिरना पड़ता। महर्षियों की रतिआतुर विकराल मुद्रा देख यह काँप उठती। अब ऋषि लोग इसे भयंकर अजगर समझ कबूतर की भाँति ध्यानमग्न हो जाते हैं। पहले ऋषि रतिकामी थे अब गृहस्थ भी मुक्तिकामी हो रहे हैं।'—खूँटों से बँधी गौओं की ओर संकेत कर उसने कहा—'अगले वर्ष व्यवसाय-पर्यटन में आकर देखना, मृग और गौएँ भी समाधि लगा प्राणायाम करती दिखाई देंगी। ब्रह्मज्ञानी सारिपुत्र विश्वामित्र की जय हो ! सुना है, देवताओं की कृपा की उपेक्षा कर सजीव सृष्टि का सार्थ ( क़ाफ़िला ) स्वर्ग की ओर चल देगा। सप्तसिंधु की भूमि सभी प्रकार निश्कर्म हो कर्मों का फल देने वालों की शक्ति का अस्तित्व मिटा मुक्त हो जायगी।'

आधी घड़ी बाद अर्हत के साथ दूसरी डोली भी लौट आई। सुनहले केशों वाली अप्सरा सुवर्णा के मुख पर भी निराशा की श्यामलता

छाई हुई थी। पिक का कण्ठ असफलता से अवरुद्ध हो रहा था। दिन भर घूमने के बाद केवल थोड़ा सा अन्न एक झोली में अर्हत के दायें कंधे पर लटक रहा था और बाँईं काँख में वीणा।

बरगद के तने से पीठ लगाये वृद्ध चित्रक की प्रश्नात्मक दृष्टि के उत्तर में अर्हत बोला—'अब कुछ नहीं हो सकता। जो लोग अपने पैतृक धर्म देवताओं की पूजा से विमुख हो, अहंकार से निश्कर्म द्वारा ब्रह्म बनने का दम्भ करें वे लोग गंधर्वों को भी अपना शत्रु ही समझते हैं। जो लोग देवताओं के दिये जीवन को बन्धन समझ मुक्ति चाहें, देवताओं के प्रति उनकी क्या श्रद्धा होगी और क्या वे गन्धर्वों का स्वागत करेंगे? तभी तो आज सप्तसिंधु के नगरों और तपोवनों में हमारा स्वागत शाप और प्रहार से होता है। महाकाल विश्वामित्र के दूत बन-बन और नगर-नगर घूम, ब्रह्मज्ञान साधना के लिये वैराग्य और तपश्चर्या के अनुशासन की देख भाल करते हैं।

'नगर के उपान्त में एक वानप्रस्थीने पिक के कण्ठ के आलाप और वीणा की गत से व्याकुल हो यह सेर भर कोदों दे प्रार्थना की—हे गन्धर्व, संगीत के लिये तृषित मेरे कानों को व्यथित न कर। जो वर्जित है उसके प्रति आकर्षित न कर! सारिपुत्र विश्वामित्र के अनुशासन से मुझे अपनी आत्मा को ब्रह्म में लीन करना है। तुम्हारा यह देवताओं के लिये भोग्य संगीत जीवन की दबी हुई कामनाओं को जाग्रत करता है। तुम्हारे इस संगीत से मेरी आत्मा सांसारिकता में यों उलझी जा रही है जैसे मक्खी मकड़ी के जाल में। ब्रह्म ने अपने आकर्षण से भी अधिक शक्ति तुम्हें क्यों प्रदान की है? ले, यह अन्न और मुझ पर दया कर!'

मृदुला सहसा घूमकर उत्तेजित स्वर में बोली—'तो यह अन्न कला का पारिश्रमिक नहीं, भिक्षा है। भिक्षा का अन्न हम नहीं खा सकते! भिक्षान्न से अंगों की स्फूर्ति जाती रहती है, लावण्य मिटकर शैथिल्य आ जाता है!'

अपनी कटि से स्वर्ण की किंकणी उतार उसने अर्हत के सामने फेंक दी—'यह लो, तीन वर्ष पूर्व वैदूर्य के महाशाल ने मेरे कौमार्य का अन्त कराने के अधिकार के मूल्य में इसे दिया था।

वृद्ध कुलपति चित्रक अब तक चुप थे। किंकणी की झंकार से उनकी चिन्ता-तंद्रा भंग हो गई। किंकणी की ओर देख वे बोले—'इसे रखो मृदुला। यह आभूषण ही नहीं, व्यवसाय का साधन भी है। बिना नृत्य कैसे होगा? वह कुल भर का गौरव है।' उन्होंने पिक को सम्बोधन किया—'तुम्हारे पावों में चाँदी के आभूषण अधिक हैं। कल प्रातः अन्न खरीदने के लिये एक दे देना। वह अपना बनाया है। भले दिन आने पर और बन जायगा।' अन्न की ओर संकेत कर उन्होंने आज्ञा दी—'यह नई ब्याई कपिला गाय को खिला दो! अनुपार्जित अन्न के भोजन से प्रमाद और स्वार्थ की प्रवृत्ति पैदा होती है।'

वृद्ध कुलपति कुछ देर अपनी श्वेत दाढ़ी पर हाथ फेर, चिन्ता की मुद्रा में बोले—'सारि पुत्र विश्वामित्र सिन्धु पार पर्वतों पर रहने वाले देवताओं को यज्ञ में मिलने वाले भाग से ईर्षा करता है। वह महाराज इन्द्र के प्रभाव से स्पर्धा करता है। वह देवताओं के चारण और सहायक ब्राह्मणों और गन्धर्वों से भी घृणा करता है। स्वर्ग के स्वामी देवताओं और उनके आश्रित ब्राह्मणों को बलि न देने के लिये विद्रोह में उसने ब्रह्म की कल्पना रची है।' वह यज्ञ की बलि से देवताओं को नहीं ब्रह्म को तृप्त करना चाहता है। ब्राह्मण और देवता की उपेक्षा कर वह स्वयम ब्रह्म बन जाना चाहता है। देवताओं के प्रति विद्रोही देश में हमारा निर्वाह नहीं हो सकता। कुल अपना संग्रह सम्भाल ले। प्रातः ही हम विपाशा पार के जनपदों की ओर लौट चलेंगे।'

× × ×

सारिपुत्र विश्वामित्र की प्रतिज्ञा से सप्तसिंधु का आकाश देवताओं की स्तुति में वीणा, मृदंग और मंजीरे की ध्वनि के संयोग से

उठने वाले वाद्य-गायन से शून्य होगया। भाव और पदार्थ के रूप में देवताओं के बलिभाग से लोक उपेक्षित होने लगे। भोग के साधनों से भोगों के स्वामी देवताओं का अर्चन न कर लोग यज्ञ साधन और आत्म चिन्तन द्वारा, विश्वास के आग्रह से साक्षात् ब्रह्म से आत्मा के संयोग की कामना करने लगे। वैराग्य की साधना में कुल और वंश का केन्द्र नारी पाप मूल हो धर्मार्जन के उपक्रम से बहिष्कृत होगई। जीवन में पूर्णता देने वाले देवताओं की अर्चना के सहायक और उनकी बलि के वाहक ब्राह्मणों, गन्धर्वों और अप्सराओं का तिरस्कार होने लगा।

व्यवसाय के लिये सिंधु पार गये गन्धर्वों और अप्सराओं के सार्थ (काफ़िले) धन-धान्य से हीन, निस्तेज और असफल हो गान्धार देश लौटने लगे। गान्धार के उद्यान विरूप और जनपद वीरान होगये। कुछ गन्धर्वों ने भूख से कातर हो याचक वृत्ति ग्रहण करली। अनेक ने दूसरा उपाय न देख, दस्यु वृत्ति का सहारा ले लिया। वीणा और मृदंग को निरुपयोगी देख, वे धनुष-बाण और भाले ले यात्रियों, व्यापारी सार्थों और सिन्धु पार देश के नागरिकों से अपने जीवन की रक्षा के लिये बलात धन छीनने लगे।

गन्धर्वराज चित्ररथ प्रजा में अपनी प्रतिष्ठा और अनुशासन को विक्षिप्त और असमर्थ हो रहे थे। गन्धर्वों के दल उनके समीप आ निशक्त और निर्बल होगये देवताओं से विद्रोह करने का आग्रह करने लगे। गन्धर्वराज के समझाने पर वे धृष्टता से उत्तर देते—'प्रजा के सुख-दुख की तुम्हें क्या चिन्ता? इन्द्र की सभा में तुम्हें सभी सुख-भोग प्राप्त हैं। तुम्हारी मेनका देवराज इन्द्र को अपने दीर्घ केशों की वेणी में बन्दी बनाये है। अपनी इस सारहीन प्रतिष्ठा के गर्व में तुम अन्धे हो। भूख और दैन्य क्या है, तुम क्या जानो! इसीलिये तुम इन्द्र के अनुचर बने हो। जिन देवताओं का प्रभुत्व ब्राह्मणों की दया पर निर्भर है, हम उनकी सेवा और दासत्व क्यों करें?'

× × ×

चंद्रा नदी पार कर कुलपति चित्रक का सार्थ रात्रि में विश्राम कर रहा था । मध्य निशा की नीरवता में दस्यु समूह ने उनके पड़ाव पर आक्रमण किया। भयार्त गन्धर्वों और अप्सराओं ने दुहाई दे प्राण-भिक्षा माँगी। दस्युओं की भाषा से वे समझ गये, आक्रमण करने वाले स्वयम् उनकी मातृभूमि के गन्धर्व हैं। परन्तु यह गन्धर्व वीणापाणि न रहकर शस्त्रपाणि बन गये थे।

वृद्ध कुलपति चित्रक ने दुहाई दी—'बन्धुगण, हम देवाधिदेव इन्द्र के दास और गन्धर्वराज चित्ररथ की प्रजा हैं। हमारा द्रव्य देवताओं की श्रद्धा और पूजा में अर्पित है। इस द्रव्य के अपहरण से पाप और फल में देवताओं का कोप होगा। देवताओं के गण होने से हम अवध्य हैं और हमारा द्रव्य अपरिहार्य है........।'

आक्रमणकारी, सशस्त्र गन्धर्वों ने चित्रक के कुल का सम्पूर्ण द्रव्य छीन लिया और कहा दूसरों के श्रम का उपभोग करने वाले ब्राह्मणों की कृपा के आश्रित देवताओं के प्रसाद की हमें कामना नहीं और शाप का भय नहीं। दूसरों के श्रम से उत्पन्न द्रव्य का भोग यदि देवता और उनके कारण ब्राह्मण कर सकते हैं तो वही कर्म हमारे लिये पाप क्योंकर है। वे इस द्रव्य को छल से प्राप्त करते हैं, हम बल से प्राप्त कर सकते हैं। जिस धन की हमें आवश्यकता है वह हमारा है। हिमवान के आंचल में निभृत अलकापुरी में विलासग्रस्त मघवा के प्रसाद की अपेक्षा हमें अपने धनुष की प्रत्यंचा और खड्ग की धार का भरोसा है।

संख्या में अपने से कहीं अधिक चित्रक के समृद्ध कुल को लूट आततायी गांधार दस्युओं का दल चला गया। वृद्ध चित्रक चिंतामग्न हो सोचते रहे, द्रव्य और साधन से हीन हो उनका सार्थ किस प्रकार यात्रा करेगा और गांधार के वीरान उद्यानों में उनका निर्वाह कैसे

होगा। उनके सामने एक ही उपाय था, निरीह होकर जैसे वे लुट गये वैसे ही वे दूसरों को लूट लें। देवताओं से रक्षा का भरोसा न रहने पर स्वयं अपनी रक्षा करने के अतिरिक्त उपाय न रहा।

चित्रक के आदेश से कुल ने मृदंग और वीणा को एक ओर रख शस्त्र अभ्यास आरम्भ किया। यात्रियों और सार्थों को लूटकर द्रव्य संचय की अपेक्षा उन्होंने शस्त्र संचय किया; वह शस्त्र जो द्रव्य का रक्षक और उत्पादक था। अनेक जनपदों को लूटते छोटे-मोटे दस्यु दलों को अपने दल में मिलाते। यह लोग पुनः विपाशा पार कर शतुद्री पहुँचे। शस्त्र-बल की वृद्धि से चित्रक का दस्युदल महासैन्य के रूप में परिणित हो गया, जिसके लिये एक विशाल भूभाग की आवश्यकता थी।

शतुद्री पार कर अनेक गणों के जनपदों और तपोवनों की भूमि को अपने अधिकार में कर चित्रक ने कुरुदेश में अपना निवास स्थान निश्चित किया। निस्सत्व और निराश्रय हो गये अनेक ब्राह्मणों ने चित्रक को दस्यु और देवद्रोही कह उसके आधीन देश को त्याज्य घोषित कर दिया।

चित्रक ने अनेक लोगों को आश्रय दे केवल अपने वंश की शरीर रक्षा का काम सौंप दिया और सैकड़ों दास उसके वंश की सेवा करने लगे। सैकड़ों व्यक्ति चित्रक से निर्वाह के लिये द्रव्य पा उसके अधिकृत देश में बसने वाले लोगों से उनके उपार्जित द्रव्य का पाँचवाँ और छठा भाग ले उसके कोष में भरने लगे।

कुलपति चित्रक की मृत्यु के पश्चात अर्हत वंश का नेता और अधिकृत देश का राजा हुआ। मृदुला राज महिषी के पद पर आसीन हुई। महाराज अर्हत और मृदुला प्रभुता और प्रतिष्ठा के विचार से मनुष्यों के कंधे पर रखी पालकी पर बैठकर चलते। साधारण जन पाँव से चलते।

चित्रक का वंश सुख और विश्राम की अवस्था में शिथिल होने

लगा। चित्रक के वंश द्वारा अधिकृत और अपहृत भूमि के गणों की जनता विद्रोह करने लगी। अपने परिश्रम का धन वे कर रूप में न देना चाहते थे। अर्हत ने एक महायज्ञ का समारोह किया। ज्ञानी ब्राह्मणों ने वशिष्ठ के नेतृत्व में अर्हत के यज्ञ का विरोध करते हुए कहा—'आततायी और पापी होने के कारण उसे धर्मानुष्ठान का अधिकार नहीं !'

अर्हत ने एक सहस्र गोधन और एक सहस्र दास-दासी और असंख्य स्वर्ण की भेंट महाज्ञानी सारिपुत्र विश्वामित्र के चरणों में अर्पण कर यज्ञ कार्य में ब्राह्मणों के एकमात्र अधिकार का विरोध किया और उन्हें ब्रह्मज्ञानी मान यज्ञ का पौरोहित्य सम्पादन करने की प्रार्थना की।

महर्षि विश्वामित्र ने ब्रह्मऋषि का पद ग्रहण कर अर्हत का यज्ञ सम्पादन कर घोषित किया—'क्षत्रिय राजा सर्वशक्तिमान ब्रह्मा की भुजा है, शासन क्षत्रिय का धर्म है। वह राजा प्रजा के धन का स्वामी और पिता है। उसका विद्रोह पाप है।

१६

## तर्क का फल

इस नश्वर संसार का निर्माण करने से पूर्व केवल सर्वशक्तिमान, शाश्वत भगवान-खुदावन्द करीम का ही अस्तित्व था। सर्वशक्तिमत्ता के प्रमाण स्वरूप भगवान ने भूमि, जल, वायु, अग्नि, आकाश और जीवों की सृष्टि की। इस सृष्टि का शासन करने के लिये अपने से कम शक्तिमान फ़रिश्तों की उत्पत्ति की। एक के बाद एक पाँचसौछिअत्तर फ़रिश्ते अस्तित्व में आये। फ़रिश्तों में कोई कम और कोई अधिक शक्तिमान थे। बुद्धि और सामर्थ्य के नाते फरिश्तों में इबलीस सब से मुख्य थे। उनका पद शिक्षकों के शिक्षक-मुअल्लिमउलमलकूत का था।

पाँचसौछिअत्तर फ़रिश्तों की उत्पत्ति कर चुकने के बाद भी भगवान की लीला तृप्त न हुई। उन्होंने एक और फ़रिश्ते आदम की सृष्टि की। फ़रिश्तों की सीढ़ी में आदम सब से नीचे थे। फ़रिश्तों के शरीर सूक्ष्म तत्व, प्रकाश के बने थे। मनुष्य रचा गया स्थूल तत्व पृथ्वी से।' आदम की इस हीनता पर भगवान के हृदय में करुणा उपजी। फरिश्तों में न सही जीवों में भगवान ने आदम को शिरोमणी नियत किया और उसे 'अशरफ़उलमखलूकात' का दर्जा दिया।

एक दिन भगवान ने सब फ़रिश्तों को अपने दरबार में हाज़िर होने का हुक्म किया। भरी महफ़िल में आदम को पेश कर उन्होंने

फ़रमाया—'आदम को हमने अपनी शक्ल-सूरत अता की है। वह अशरफ़उलमख़लूकात होगा। सब फ़रिश्ते भी उसे सिजदा करें।

फ़रिश्तों के लिये उन्हें पैदा करनेवाले कादिरमुतलिक (सर्वशक्तिमान) खुदावन्द क़रीम का हुक्म ही फ़र्ज़ और क़ानून था। एक के बाद एक पाँच सौ पचहत्तर फरिश्तों ने आदम को सृष्टि के जीवों में शिरोमणि स्वीकार कर उसके सन्मुख सिर झुकाया और खड़े होगये। रह गया केवल इबलीस, जो खुदा का सब से प्यारा और भरोसे का फ़रिश्ता था। अपने आदेश के प्रति सब से अधिक विश्वास-पात्र फरिश्ते के हृदय में आशंका जान भगवान विस्मय और दुख से देखते रह गये!

इबलीस को सम्बोधन कर खुदावन्दक़रीम ने पूछा—'और तुम?'

चिन्तापूर्ण दृष्टि भगवान की ओर उठा इबलीस ने उत्तर दिया—'मैं जानना चाहता हूँ, आदम अशरफ़उलमखलूकात है तो क्योंकर और उसे सिजदा किया जाय तो क्यों?'

इबलीस की इस हुक्मउदूली से खुदावन्दकरीम के माथे पर बल पड़गये। क्रोध से कठोर ध्वनि में उन्होंने कहा—'जो कोई हमारे हुक्म पर शक और एतराज़ करता है, वह हमसे मुनकिर है और गुनाहगार है। तुम आज से शैतान करार दिये गये। तुम्हारा दर्जा तोड़ दिया गया। बहिश्त में तुम्हारे लिये जगह नहीं। हमारे हुक्म पर शक और एतराज़ करने की सज़ा यह है कि तुम दोज़ख में जाओ!'

सब फ़रिश्ते सकते में आगये। कान छूकर उन्होंने भगवान की आज्ञा के सम्बन्ध में कभी किसी प्रकार का सन्देह न करने की प्रतिज्ञा की। आदम कुछ न समझ चुप-चाप चकित और भोली आँखों से खुदा की कुदरत को निहारते रहे।

आदम अशरफ़उलमखलूकात बन गये। खुदा ने उन्हें अपनी ही शक्ल-सूरत अता फ़रमाई थी। उन पर भगवान का प्रेम और कृपा थी। उन्हें खेलने और मन बहलाने के लिये अदन के बाग़ में भेज दिया

गया। अल्लाताला ने फ़रमाया—'बेटा यह बाग़ तुम्हारा है, जो चाहो खाओ-पियो। दूध और शहद की नहरें हैं, हसीन हूरें हैं।' एक पेड़ दिखा कर समझा दिया—'और चाहे जो करो, बस इसका फल न खाना!'

करने को कुछ न रहने से आदम कुछ चुपचपीते और उदास से रहते। खुदावन्द ने देखा और सोचा, अशरफउलमखलूकात उदास रहता है। हूरें हैं सही लेकिन शायद आदम उनसे डरता और सहमता है। इसका दिल बहलाने के लिये इसकी अपनी जात की ही एक चीज़ और होनी चाहिये।

आदम की ही एक पसली निकाल उन्होंने हव्वा को बनाया कि आदम की बगल में ठीक से सट सके। रूप-रंग बिलकुल हूरों का सा। अन्तर केवल इतना कि वह आदम की अपनी जात की थी। सिर पर लम्बे-लम्बे बाल-चेहरा चिकना और प्यारा-प्यारा। बदन पर ऐसा उठाव-दबाव कि आदम की आंखें उस पर जमजायँ, आदम के अपने शरीर के लिये विश्राम और सुख का कारण बन सके।

आदम हव्वा को संग ले इस पेड़ से उस पेड़ के नीचे बेमतलब फिरा करते। उन्हें कुछ भी सुख न हुआ। सुख तो तब होता जब कभी दुख भी देखते और जानते कि सुख और दुख क्या होता है!

× × ×

शैतान क़रार देकर बहिश्त से निकाल दिये जाने के अपमान से इबलीस का हृदय जल रहा था। उसका यह सब अपमान हुआ, आदम के प्रति खुदा के पक्षपात के कारण। भगवान की आज्ञा से आदम के आगे सिर न झुकाने के कारण वे स्वर्ग से खदेड़ दिये गये। बहिश्त के बाग़ के मेवे, दूध और शहद की नहरें और हूरों की संगति सब कुछ गई। और वह भोंदू आदम, अपनी पथराई सी आँखें लिये बहिश्त में घूमा करता।

अपने अपमान और आदम के प्रति ईर्षा से इबलीस का हृदय जल उठा। उसने प्रण किया:—एक दिन हम सब फ़रिश्तों के

आगे खुदावन्द की बग़ल में बैठते थे। हम भी कुछ हिम्मत रखते हैं। अशरफउलमखलूकात कहलाने वाले इस आदम ने मेरा अपमान कराया खुदावन्द की नज़रों में ही इसे ज़लील न किया तो मेरा नाम इबलीस नहीं ! खुदावन्द भी देख लें, मैं कैसा 'शैतान' हूँ !'

आदम बहिश्त के बाग़ की चार दीवारी में सुरक्षित थे। वहाँ इबलीस की पहुँच न थी। दीवार फाँदकर भीतर घुसने की कोशिश में पकड़ा जाता तो बुरी तरह पिटता। उसने साँप का रूप धरा और दीवार की जड़ के किसी छेद से बहिश्त के बाग़ में जा पहुँचा।

साँप का रूप धरे इबलीस ने देखा, आदम उसी पेड़ के नीचे बैठे थे जिसका फल चखने के लिये खुदावन्दताला ने उसे मनाकर दिया था। हव्वा कुछ दूर परे हरी घास पर बैठी घास के मीठे-मीठे, सरस, तृण चबाकर समय काट रही थी।

आदम के समीप पहुँच इबलीस ने पूछा—'सब जीवों के शिरोमणि कैसे हो ?'

'ऐसे ही हैं, जैसे थे'—आदम ने उत्तर दिया।

'कहो, क्या खाते पीते हो ?'—इबलीस ने दूसरा प्रश्न किया।

—'सब कुछ दूध है, शहद है, तरह तरह के फल हैं।'

'इस फल को देखो, कितना सुन्दर है, इसे कभी नहीं खाया तुमने ?'—वर्जित फल दिखा मुस्कराकर इबलीस ने पूछा।

—'नहीं।'

'खाओ न, यही तो सबसे सुन्दर और स्वादु है'—इबलीस ने समझाया।

'नहीं, खुदावन्द ने इसे न खाने के लिये कहा है।'—सिर हिलाकर आदम ने उत्तर दिया।

—'तो क्या हुआ; खाकर तो देखो ! बड़ा ही रसीला है। खुदावन्द भी तो इसे खाते हैं।'

'हिश्त !'—ग्लानि से आदम ने सिर हिला दिया और उठकर इबलीस से दूर चले गये।

क्या असफल लौटना पड़ेगा ? इबलीस सोचने लगा। हव्वा को देख ख़याल आया—'क्यों न इसे ही फुसलाऊँ। यह मान जायगी तो वह उजड्ड भी वश में आजायगा। हरी घास में फिसल कर हव्वा के समीप पहुँच इबलीस ने सम्बोधन किया—'घास खा रही हो ? क्या घास ही खाया करती हो ?'

—'नहीं, सब कुछ खाते हैं।'

वर्जित फल की ओर संकेत कर इबलीस ने कहा,—'वह देखो कितना सुन्दर और सरस फल है, उसे खाओ !'

—'नहीं उसे खाने के लिये तो खुदावन्दताला ने मना कर दिया है।'

'खुदावन्दताला ने मनाकर दिया है तो क्या ? खाकर देखो ! यह सब कुछ तुम्हारे ही लिये तो है'—इबलीस ने समझाया।

'हाँ है तो' मगर खुदावन्दक़रीम का दिया ही तो है। उन्ही ने हमें पैदा किया है और हमें अपनी सी सूरत दी है'—हव्वा ने अपनी भोली आँखें फैलाकर कहा।

'वाह, कौन कहता है खुदावन्द ने तुम्हें अपनी सी सूरत दी है। तुमने क्या अपनी सूरत देखी है ? खुदावन्द इस फल को खाते हैं। अगर उन्होंने तुम्हें अपनी सी सूरत दी है तो फिर इस फल को खाने में ही क्या हरज़ है ? असल बात तुम्हें बताऊँ—'हव्वा के कान में इबलीस ने कहा—'तुम्हारी और खुदा की सूरत में थोड़ा सा ही फरक़ है। अगर तुम इस फल को खालो तो वह फ़रक मिट जाय ! यही तो खुदावन्द की चालाकी है।'

इबलीस ने देखा, आदम लौटे चले आ रहे थे। उनके पहुँचने से पहले ही हरी घास में फिसलता, वह बाग़ की दीवार के बाहर होगया।

उस रात भर आदम और हव्वा में वह फल चखने के विषय में झगड़ा चलता रहा। आदम कहते थे—'खुदावन्दकरीम ने मना कर दिया है इसे नहीं चखेंगे!'

हव्वा कहती थी—'ज़रा चख ही लेंगे तो क्या हो जायगा? अच्छा न लगेगा छोड़ देंगे।'

आदम ने न माना तो हव्वा रूठ गईं। आदम बड़ी मुश्किल में थे, क्या करें? आखिर, कबतक हव्वा की बात टालते? खुदावन्दकरीम ने हव्वा को बनाया ही इसलिये था कि उसकी बात मानी जाय, उसके साथ खुश रहा जाय! आखिर हव्वा की ही बात रही।

× × ×

भगवान द्वारा वर्जित फल में आदम और हव्वा ने दाँत गड़ाये ही थे कि अचानक वे दोनों चिल्ला उठे—'अरे हमतो नंगे..........?' दोनों परेशानी में इधर-उधर भाग वृक्षों के पत्तों से अपने आप को ढकने लगे।

खबर खुदावन्दकरीम तक पहुँची। अपनी आज्ञा की अवहेलना से क्रुद्ध हो उन्होंने फ़रिश्तों को आज्ञा दी—'निकाल दो इन कमबख्तों को बहिश्त से! और इस गुनाह का फल आदम का वंश 'मनुष्य' अपनी परम्परा तक भोगता रहेगा!'

आदम और हव्वा को उसी अवस्था में बहिश्त से खदेड़ दिया गया। भगवान द्वारा वर्जित फल हाथ में लिये ही वे बेचारे बहिश्त से बाहर आगये। शैतान-इबलीस ने यह देखा और मन ही मन हँस कर रह गया—अभी क्या, खुदावन्द आगे देखियेगा क्या होता है।

× × ×

पत्तों से बदन ढँके नर और नारी (आदम-हव्वा) पृथ्वी पर आगये। सूख कर झड़जाने वाले पत्तों के स्थान में उन्हें अधिक मज़बूत वस्तुओं का व्यवहार शरीर ढकने के लिये करना पड़ा। स्वर्ग के बाग

की तरह सदाबहार फलों के पेड़ पृथ्वी पर न थे इसलिये उन्हें अपने भोजन की चिन्ता भी स्वयं करनी ही पड़ी। पृथ्वी स्वर्ग की भांति सुखमय न थी। आदम और हव्वा की औलाद पुरुष और स्त्री को हर बात और हर स्थान पर कठिनाई अनुभव होती। वे सर्दी से काँपते परन्तु हवा बन्द न होती। वे धूप से व्याकुल होजाते और सूर्य उन पर दया न करता। पानी से वे परेशान हो जाते और वह बरसना बन्द न होता। वे जानते थे यह खुदावन्द की मर्जी से होता है। बहिश्त के बाग़ के उस वर्जित फल का रस जिह्वा को लग गया था। वह सोचने लगते:—ऐसे होता है तो क्यों? और इसका उपाय?

खुदावन्द करीम स्वर्ग से देखते रहे। शैतान नर्क से देखता रहा। पृथ्वी पर मनुष्य अपनी मुसीबतों का उपाय 'क्यों और कैसे' से करता रहा। देखते-देखते वह समय आया, जब पानी मनुष्य के लिये भय का कारण और मुसीबत न होकर उसका दास बन गया। वह बरसता तो उसे परवाह नहीं, न बरसता तो मनुष्य उसे ज़मीन की तह फोड़, पहाड़ से बाँध, खींच लाता। जो नदी समुद्र उसके डूब जाने के लिये बनाये थे उन पर वह जलविहार करता। हवा-मनुष्य दीवारें बना आँधी को अपने से दूर रखने लगा और जब ज़रूरत होती हवा को चला भी लेता। सूर्य के उदय अस्त की उसे चिन्ता न रही। प्रकाश और अन्धकार उसकी इच्छा के दास हो गये। सबसे भयंकर आपत्ति बिजली, उसकी सबसे अधिक मनोनीत दासी हुई। अन्तरों की बाधायें मिट गईं। मनुष्य की आँख सैकड़ों मील देखने, कान हजारों मील तक सुनने लगे। उसके निर्बल हाथों की शक्ति पहाड़ों को तोड़ने और समुद्रों को पाटने लगी। यहाँ तक कि वह हवा में भी उड़ने लगा।

यह सब होते हुये भी यह नहीं कि मनुष्य को दुख न हो। उसे भयंकर से भयंकर दुख भी होते हैं। कभी-कभी मतवाला हो वह अपना गला घोंटने और पेट फाड़ने की तदबीरें करने लगता। उस समय

बहिश्त में बैठे भगवान-खुदावन्दकरीम उसकी हालत पर तरस खाकर कहते—'अब भी यह अपने पापों का प्रायश्चित कर ले तो इसे क्षमा कर दूं !'

दोज़ख में बैठा शैतान भी हैरान होता क्या किसी को उस फल के चखने न देने में ही भगवान की शक्ति का राज़ था ?

...लेकिन मनुष्य, अपने लिये स्वयम सृष्टि बनाने के लिये मजबूर होने के दिन से, हाथ में वही तर्क का वर्जित फल मजबूती से पकड़े था और कहता:—'भगवान और शैतान ! हैं भी या नहीं....?'